यज्ञोपवित

संस्कार

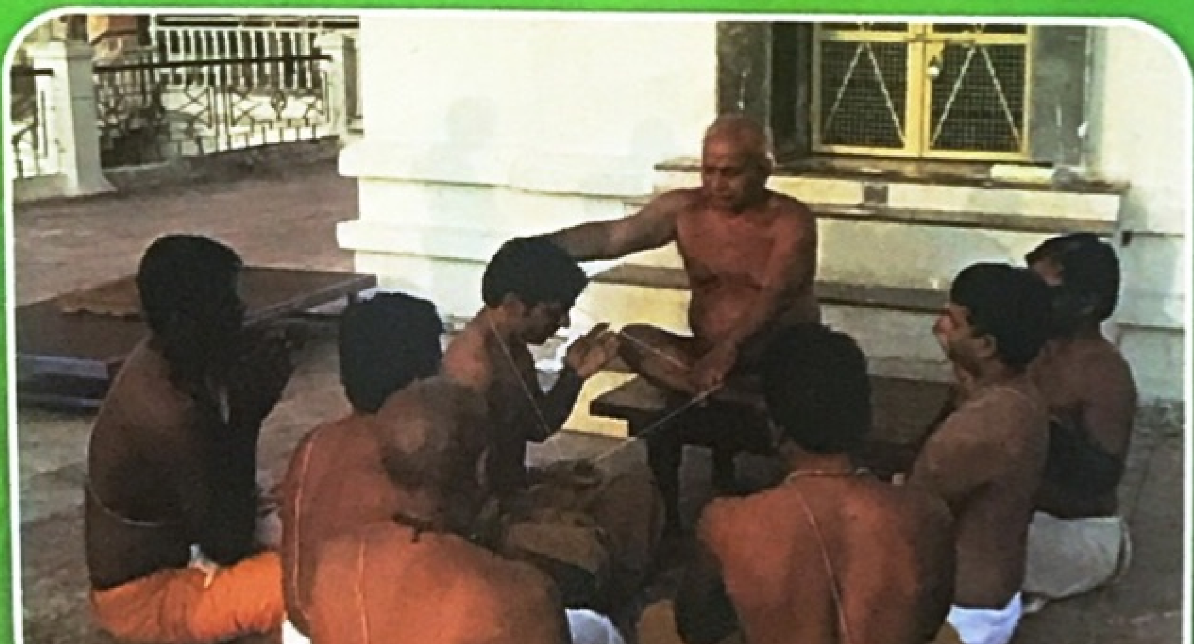

संग्रहकार
परम पूज्य मन्त्रविद्या-चक्रवर्ती, गणधराचार्यश्री कुन्थुसागर जी महाराज

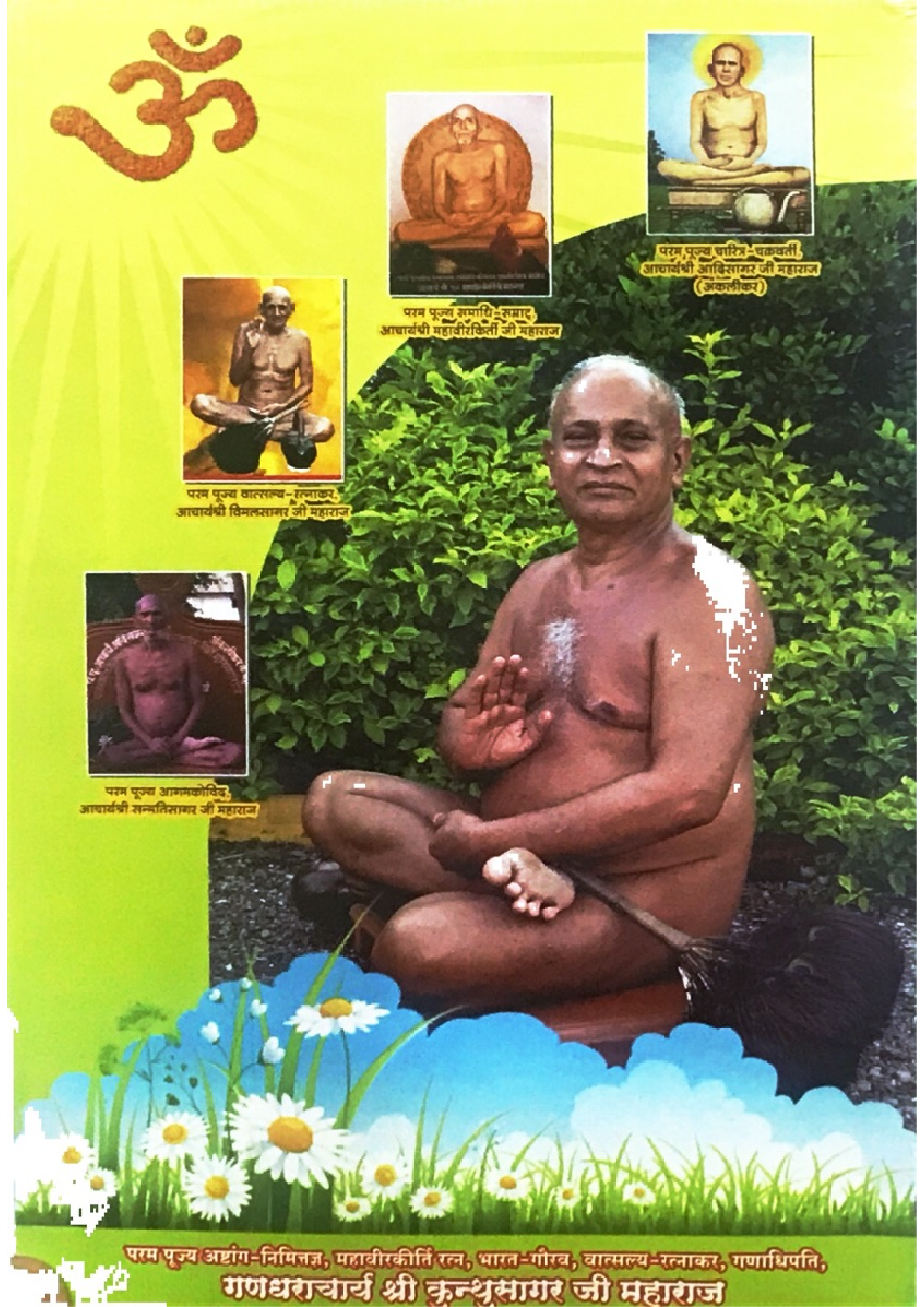
ॐ
परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)
परम पूज्य समाधि-सम्राट,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज
परम पूज्य वात्सल्य-रत्नाकर,
आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज
परम पूज्य आगमकोविद,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज
परम पूज्य अष्टांग-निमित्तज्ञ, महावीरकीर्ति रत्न, भारत-गौरव, वात्सल्य-रत्नाकर, गणाधिपति,
गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज

ॐ ह्रीं पार्श्वनाथाय नमः।

यज्ञोपवीत संस्कार

संकलनकार

परम पूज्य मन्त्रविद्या–चक्रवर्ती, गणाधिपति,

गणधराचार्यश्री कुन्थुसागर जी महाराज

सम्पादिका

पूज्या आर्यिकाश्री सुयोगमती माताजी

यज्ञोपवीत संस्कार

संकलनकार :- परम पूज्य अष्टांगनिमित्तज्ञ, गणाधिपति,
गणधराचार्यश्री कुन्थुसागर जी महाराज

सम्पादिका :- पूज्या आर्यिकाश्री सुयोगमती माताजी

सहयोगिनी :- बाल-ब्रह्मचारिणी जयश्री दीदी और बाल-ब्रह्मचारिणी पूनम दीदी

आवृत्ति :- १ प्रति :- १००० विमोचन :- २६-१-२०१५

प्राप्तिस्थान - **श्री सम्मेदाचल श्रीक्षेत्र कुन्थुगिरि**
मु. पो. आळते
ता. हातकळंगडे
जि. कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

मूल्य :- स्वाध्याय

प्रकाशक - **भरतकुमार इन्दरचन्द पापड़ीवाल**
३-४-९, पानदरिबा रोड़, अप्पा हलवाई के पास
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)४३१००१
फोन = ०२४०-२३६८७८५
मोबाइल = ०९३७११४११०४
sanmati28@yahoo.com
suvidhiguru@gmail.com
Wecsite : www.jaingranths.com

YAGYOPAVEET SANSKAR

दो शब्द

यह **यज्ञोपवीत संस्कार** नामक कृति है। चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज के विद्वान शिष्य पूज्य क्षुल्लकश्री ज्ञानसागर जी ने इसका लेखन किया है। ये वे ही क्षुल्लक हैं, जो आगे चल कर आचार्यश्री सुधर्मसागर जी महाराज हुये। आप आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज के संघ में अध्ययन कराने का कार्य किया करते थे। जीवनान्त में आपकी समाधि कुशलगढ़ (राजस्थान) में हुई है।

वर्तमान मानव संस्कारविहीन हो गये हैं। वे संस्कारों को अनावश्यक समझने लगे हैं। षोडश संस्कारों में एक यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार भी है। जनेऊ को धारण किये बिना श्रावकों को षट्कर्म करने का अधिकार नहीं रहता। इसीलिये जब बच्चा पाँच वर्ष का हो जाये अथवा आठ वर्ष का हो जाय, तब उस बच्चे का मौजीबन्धन और जनेऊ संस्कार अवश्य करना चाहिये। संस्कार होने के उपरान्त ही वह बालक जैन कहलाता है। कुछ लोगों की मान्यता है कि जनेऊ धारण करना ब्राह्मणों का धर्म है, जैनों का नहीं। इस शंका का समाधान करने के लिये ही यह एक छोटा-सा संग्रह तयार किया गया है। जैन श्रावक को जनेऊ अवश्य ही धारण करना चाहिये।

आर्यिका सुयोगमती माताजी ने निवेदन किया कि इस विषय पर लेखनी उठायी जानी चाहिये, जिससे श्रद्धालु भक्तों को सन्मार्गदर्शन हो सकेगा। उनके निवेदन पर मैंने इस संग्रह के लिये आशीर्वाद प्रदान किया। इस कार्य में ब्रह्मचारी सुमित भैय्या का भी सहयोग रहा।

इस पुस्तक का प्रकाशन कुन्थुगिरी क्षेत्र की व्यवस्थापिका बाल-ब्रह्मचारिणी जयश्री दीदी और बाल-ब्रह्मचारिणी पूनम दीदी ने किया है। मेरा सभी सहयोगियों को आशीर्वाद।

इस पुस्तक का संशोधन और प्रस्तुतिकरण का कार्य हमारी परम्परा के चतुर्थ-पट्टाधीश, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज ने किया है। उन्हें भी मेरा प्रतिनमोऽस्तुपूर्वक आशीर्वाद।

गणाधिपति, गणधराचार्य कुन्थुसागर

सम्पादकीय

श्रावक शब्द के अर्थ को जानने का प्रयास करें तो ज्ञात होता है कि श्रद्धा, विवेक और क्रिया इन तीन गुणों से सहित व्यक्ति श्रावक कहलाता है। जिस प्रकार पिच्छी के बिना किसी को मुनि नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) के बिना किसी को श्रावक नहीं कहा जा सकता। मोक्ष को प्राप्त करने के लिये श्रावक को छह आवश्यकों का पालन करना होता है। उन कर्त्तव्यों में देवपूजा और दान को श्रेष्ठ कर्त्तव्य माना गया है। पूर्वाचार्यों ने इन क्रियाओं को करने के लिये यज्ञोपवीत अत्यन्त आवश्यक माना है।

यज्ञे दानदेवपूजाकर्मणि धृतोपवीतं ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतमथवा यज्ञार्थं दान-देवपूजार्थं धृतं ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतमिति।

अर्थ :- यज्ञ, दान, पूजा आदि कर्तव्यों की योग्यता को जो धारण कराये, उसे ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत कहते हैं।

वर्तमान समय में स्वाध्याय की कमी, जिनवाणी के प्रति अश्रद्धा व प्रमाद के चलते कई धर्मालुजन मुख्य क्रियाओं से दूर हो रहे हैं। वे क्रियायें उन्हें कल्पित लगती हैं। जिनेन्द्र भगवान ने दिव्यध्वनि के द्वारा द्वादशांग का वर्णन किया है। हमारे कर्मोदय से वह सम्पूर्ण वाणी अभी उपलब्ध नहीं है। उसमें से कुछ अंश ही उपलब्ध है, जिसे पूर्वाचार्यों ने ग्रन्थों में अंकित किया है। उन ग्रन्थों को जन-जन तक पहुँचाने के लिये वर्तमान आधुनिक संसाधनों का प्रयोग कर मेरे गुरुवर, परम्पराचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज ने किया है। मेरी भी इच्छा रहती है कि ग्रन्थभण्डारों में रखी हुयी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ धर्मालुजनों तक पहुँचे। उसी तारतम्य में क्षुल्लकश्री ज्ञानसागर जी महाराज की पुस्तक को पुनः प्रकाशित करने के लिये परम पूज्य अष्टांग-निमितज्ञ, गणधराचार्यश्री कुन्थुसागर जी महाराज के श्री चरणों में निवेदित किया और पूज्य गुरुवरों के आशीर्वाद से यह कार्य पूर्ण हुआ।

सभी जिनभक्तों के लिये यह यज्ञोपवीत कल्याण का कारण बनें-यही शुभ भावना।

आर्यिका सुयोगमती

शिष्या :- चतुर्थ-पट्टाधीश, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत की अनादिता

यज्ञोपवीत अनादिनिधन है। जैनधर्म अनादि है, यह सभी जानते हैं। जैनधर्म अनादि है तो यज्ञोपवीत भी अनादि है। जैनधर्म की अनादिनिधन प्रवृत्ति विदेहक्षेत्र और स्वर्गलोक में है। विदेहक्षेत्र में शाश्वत धर्म निराबाध प्रचलित है। वहाँ पर कालचक्र का परिवर्तन नहीं होने से जैनधर्म का नाश कदापि नहीं होता। सदैव तीर्थंकर, सर्वज्ञ प्रभु, अनन्त चतुष्टयसहित समवसरण में विराजमान हैं। वहाँ अनेक प्रकार की ऋद्धियों से सहित अनेक मुनिगण विराजमान रहते हैं और वहाँ पर जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी मत किसी भी समय प्रकट नहीं होता। वहाँ किसी को कोई आशंका नहीं है और किसी को किसी प्रकार की बाधा भी नहीं है।

विदेहक्षेत्र में क्षत्रिय और वैश्यों के यज्ञोपवीत आदि समस्त संस्कार निरन्तर होते ही हैं। वहाँ पर सब अपने-अपने संस्कार निश्चयरूप से करते हैं। इसीलिये विदेहक्षेत्र को कर्मभूमि कहा गया है।

पहला प्रमाण :-

प्राक् प्रच्युताच्युताधीशोद्वीपेऽस्मिन्प्रग्विदेहके।
विषये मङ्गलावत्यां, स्थानीये रत्नसञ्चये।।३६।।
राज्ञः क्षेमङ्कराख्यस्य, कृतपुण्योऽभवत्सुतः।
श्रीमान् कनकचित्रायां, भासो वा मेघविद्युतः।।३७।।
आधानप्रीतिसुप्रीतिधृतिमोदप्रियोद्भवः।
प्रभृत्युक्तक्रियोपेतो धीमान् वज्रायुधाह्वयः।।३८।।
तन्मातरीव तज्जन्मतोषः सर्वेष्वभूद् बहुः।
भूषितोऽनिमिषो वासौ, भूषणैः सहजैर्गुणैः।।३९।।

(उत्तरपुराण = ६३/३६ से ३८)

भावार्थ :- अपराजित का जीव जो इन्द्र हुआ था, वह पहले च्युत हुआ और इसी जम्बूद्वीपसम्बन्धी पूर्व विदेहक्षेत्र के रत्नसंचय नामक नगर में राजा क्षेमंकर की कनकचित्रा

नाम की रानी से मेघ की बिजली से प्रकाश के समान पुण्यात्मा श्रीमान तथा बुद्धिमान वज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। जब यह उत्पन्न हुआ था, तब आधान, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोह और प्रियोद्भव आदि क्रियायें की गयी थी। उसके जन्म के समय उसकी माता के ही समान सबको बहुत भारी सन्तोष हुआ था। सो ठीक ही है, क्योंकि सूर्य का प्रकाश क्या केवल पूर्व दिशा में ही होता है?

इस प्रकार विदेहक्षेत्र में सभी जीव नियम से यज्ञोपवीत आदि संस्कार नियम से करते हैं।

दूसरा प्रमाण :-

श्रीमान श्रीपाल महाराज चक्रवर्ती ने पुण्डरीक नगरी (अपनी राजधानी) में यज्ञोपवीत धारण किया।

मयोपनयनेऽग्राहि, व्रतं गुरुभिरर्पितम्।
मुक्त्वा गुरुजनानीतां, स्वीकरोमि न चापराम्।।

(आदिपुराण = ४७/४१)

श्रीमान श्रीपाल महाराज अपने विचार प्रकट करते हैं कि मैंने यज्ञोपवीत धारण किया है और गुरु के द्वारा व्रत ग्रहण किये हैं। अब मैं गुरुजनों से प्राप्त विवाहिता स्त्री को छोड़ कर अन्य स्त्री को कदापि स्वीकार नहीं कर सकता।

इस श्लोक में जैनधर्म की कितनी महत्त्व की बाते हैं? विवाह (शादी) गुरुजन, पितादि ही कराते थे। सबको स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहण करने का धर्म विदेह क्षेत्र में नही है।

दूसरी बड़े महत्त्व की बात यह है कि श्रीपाल महाराज कहते हैं कि मैंने यज्ञोपवीत धारण किया है। मैं अन्य स्त्री को किस प्रकार स्वीकार करूँ?

अहा! यज्ञोपवीत के धारण करने में कितना पुण्यबन्ध और कैसा परमोत्कृष्ट माहात्म्य है? जो लोक यज्ञोपवीत को धागा समझते हैं, उनको इस विषय पर अवश्य ही विचार करना चाहिये।

तीसरा प्रमाण :-

युवराज मेघरथ के पिता धनरथ जिनराज तीर्थंकर का पूर्व विदेहक्षेत्र में युवराज मेघरथ को उपदेश-

सिंहासने समासीनं, सुरासुरपरिष्कृतम्।
समस्तपरिवारेण, त्रिःपरीत्याभिवन्द्य च।।

सर्वभव्यहितं वाञ्छन्, पप्रच्छोपासकक्रियाम्।
प्रायः कल्पद्रुमस्यैव परार्थ चेष्टितं सताम्।।
प्रागुक्तैकादशोपसकस्थानानि विभागतः।
उपासकक्रियाबद्धोपासकाध्ययनाह्वयम्।।
अङ्गं सप्तममाख्येयं, श्रावकाणां हितैषिणाम्।
इति व्यावर्णयामास, तीर्थकृत्प्रार्थितार्थकृत्।।
गर्भान्वयक्रियाः पूर्वं, ततो दीक्षान्वयक्रियाः।
कर्मान्वयक्रियाश्चान्यास्तत्सङ्ख्याश्चानुतत्त्वतः।।
गर्भाधानादिनिर्वाणपर्यन्ताः प्रथमक्रियाः।
प्रोक्ताः प्रोक्तास्त्रिपञ्चाशत्सम्यग्दर्शनशुद्धिषु।।

(उत्तरपुराण = ६३/२९८ से ३०३)

परम पूज्य धनरथ नामक तीर्थंकरदेव ने श्रावकों का हित करने के लिये सम्यग्दर्शन को विशुद्ध करने वाली गर्भाधानादि समस्त संस्कार क्रियाओं का उपदेश दिया। उन्होंने यह भी बतलाया कि ये क्रियायें (संस्कार) अनादिनिधन हैं, क्योंकि उपासकाध्ययन नामक सातवें अंग में इन समस्त क्रियाओं का वर्णन पाया जाता है।

श्रीमान भगवान जिनेन्द्रदेव ने यह भी बतलाया है कि इन क्रियाओं को धारण किये बिना कोई भी जीव उपासक (श्रावक) हो नहीं सकता।

इस प्रकार विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत संस्कार की प्रवृत्ति निरन्तर है।

इसके अतिरिक्त श्री अरनाथ तीर्थंकर और श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के समय विदेहक्षेत्र के वर्णन में इन संस्कारों का वर्णन पाया जाता है।

चौथा प्रमाण :-

भगवान श्री वृषभदेव ने विदेहक्षेत्र की स्थिति को अपने अवधिज्ञान से जान कर भरतवर्ष में प्रचार किया था। विदेहक्षेत्र में जो वर्णव्यवस्था, गर्भाधानादि संस्कार, गृहस्थों के षट्कर्म, कुलाचार की विधि और गृहस्थों के जो समस्त कर्त्तव्य थे, उन्होंने उसी की प्ररूपणा की। यथा-

पूर्वापरविदेहषु, या स्थितिः समवस्थिता।
साद्य प्रवर्तनीयात्र, ततो जीवन्त्यमूः प्रजाः।।

(आदिपुराण = १६/१४३)

भावार्थ यह है कि भगवान वृषभदेव ने अपने अवधिज्ञान से विदेह की स्थिति को जान कर गृहस्थों के उपकारार्थ समस्त रीति भली-भाँति प्रचलित की। सबके संस्कार कराये। सभी को धर्म का स्वरूप बतलाया।

इस बात का एक यही प्रमाण है कि श्री वृषभदेव ने स्वयं भरत महाराज के समस्त संस्कार स्वयं किये।

अन्नप्राशनचौलोपनयनादीननुक्रमात्।
क्रियाविधीन् विधानज्ञः, सृष्ठैवास्य निसृष्टवान्।।

(आदिपुराण = १५/१६४)

भावार्थ यह है कि समस्त प्रकार की विधि, समस्त प्रकार के मन्त्रशास्त्र, समस्त प्रकार के संस्कार और समस्त प्रकार की क्रियाओं को जानने वाले श्री ऋषभदेव भगवान ने भरत महाराज के अन्नप्राशन, चौलकर्म उपनयन (यज्ञोपवीत) आदि समस्त संस्कार स्वयं कराये।

जो लोग यह कहते हैं कि जनेऊ की विधि चक्रवर्ती होने के पश्चात् भरत महाराज ने चलायी। उनको विचार करना चाहिये कि श्री ऋषभदेव ने अन्नप्राशन (बालक को अन्नपान कराना), चौलकर्म (मुण्डनकर्म) और उपनयन (जनेऊ) की क्रिया बालक अवस्था में ही भरत पर की थी। उपर्युक्त प्रमाण से यह सिद्ध हो चुका है कि भरत की बाल्यावस्था में जनेऊ का संस्कार किया जा चुका था। ऐसी स्थिति में भरत ने यज्ञोपवीत की विधि चलायी है-ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है।

इस श्लोक से यह अभिप्राय भी प्रकट होता है कि यज्ञोपवीत की विधि अनादिकाल से है। तभी तो श्री ऋषभदेव ने विदेहक्षेत्र के समस्त संस्कारों को अवधिज्ञान से जान कर अपने भरतादि समस्त पुत्रों के संस्कार कराये।

इसीलिये यह सर्वथा सिद्ध है कि यज्ञोपवीत की विधि अनादि है, क्योंकि विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत की प्रवृत्ति अनादिकाल से प्रचलित है और अनन्तकाल तक सदा शाश्वत चलती रहेगी। यह ऊपर के प्रमाणों से स्वतः सिद्ध है। अब इसमें किसी भाई को सन्देह नहीं रहा होगा।

जिस प्रकार विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत की विधि अनादिकाल से स्वयं सिद्ध है, इसी प्रकार स्वर्ग में यज्ञोपवीत आभूषण के रूप में धारण करने की विधि अनादिकाल से प्रचलित है। इन्द्र आदि समस्त देव भगवान की पूजा व अभिषेक

यज्ञोपवीत के बिना नहीं करते थे। यद्यपि इन्द्रों को यज्ञोपवीत नियमित रूप से धारण करना पड़ता है। वे देव और इन्द्र अपने जन्म से लेकर मरण पर्यन्त यज्ञोपवीत को नियमित रूप से धारण करते हैं।

प्रश्न :- यज्ञोपवीत को तीर्थंकर आदि पुरुषों ने धारण किया है अथवा नहीं? यदि तीर्थंकरों ने यज्ञोपवीत धारण किया हो तो हमें यज्ञोपवीत का धारण करना मान्य है, अन्यथा नहीं।

यद्यपि तीर्थंकरों की प्रवृत्ति लोकोत्तर होती है। जो कार्य तीर्थंकर कर सकते हैं, अन्य समस्त संसारी जीवमात्र से होना असम्भव है। उनकी तुलना करना यह एक प्रकार का अज्ञान है। तीर्थंकर मुनि को दान नहीं देते। तीर्थंकर सिद्ध भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी को नमस्कार नहीं करते। यदि यह कार्य अन्य संसारी जीव करने लग जाये तो धर्म का ही लोप हो जायेगा। परन्तु संसारी जीवों के कर्त्तव्यों से तीर्थंकरों के कर्त्तव्य लोकोत्तर होते हैं। इसीलिये सामान्य मनुष्यों की तुलना तीर्थंकर देवों के साथ नहीं करना चाहिये।

फिर भी सन्तोष के लिये आगम का प्रमाण देना आवश्यक है। आगम में स्पष्टरूप से उल्लेख पाया जाता है कि समस्त तीर्थंकर यज्ञोपवीत को धारण किया करते थे।

यद्यपि तीर्थंकर देवों ने यज्ञोपवीत धारण किया था-इसके अनेक प्रमाण आगम में उपलब्ध होते हैं। तथापि यहाँ पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने यज्ञोपवीत धारण किया था, इसका प्रमाण प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा।

आचार्यश्री जिनसेन जी महाराज ने लिखा है-

कण्ठे हारलतां विभ्रत्, कटिसूत्रं कटीतटे।
ब्रह्मसूत्रोपवीताङ्गः स गाङ्गौघमिवाद्रिराट्।।

(आदिपुराण = १६/२३५)

आदिपुराण में श्री ऋषभदेव का वर्णन करते समय बतलाया गया है कि भगवान के कण्ठ (गला) में दिव्य हार शोभा दे रहा था। कमर में करधनी थी और वक्षस्थल पर परम पवित्र यज्ञोपवीत था। इसीलिये वे ऋषभदेव भगवान मेरु पर गंगा की धारा के समान शोभा दे रहे थे।

यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत के पात्र

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यज्ञोपवीत किनको और कब धारण करना चाहिये?

यज्ञोपवीत धारण करने वाले सामान्य रूप से दो प्रकार के पात्र होते हैं। प्रथमपात्र वे हैं, जो शिष्य रूप बन कर ब्रह्मचर्य अवस्था को धारण कर गुरुकुल में रह कर विद्याभ्यास के अभिलाषी होते हैं। इनके लिये यज्ञोपवीत धारण करने की विधि अन्य है। दूसरे पात्र वे हैं, जो गुरुकुल में रहने के इच्छुक नहीं हैं। किसी विशेष कारण से वे अपना घर छोड़ना नहीं चाहते अथवा किसी अनिवार्य कारण से यज्ञोपवीत समय पर धारण नहीं कर सके हैं। अथवा, भरत महाराज आदि के समान घर में रह कर श्री ऋषभदेव भगवान से यज्ञोपवीत धारण किया और दान-पूजा आदि षट्कर्मों के पालन करने में दत्तचित्त रहे। इनको यज्ञोपवीत धारण करने की विधि प्रथम पात्र से भिन्न है।

इस प्रकार यज्ञोपवीत को धारण करने वाले सामान्य रूप से दो प्रकार के पात्र हैं, परन्तु जिनागम में यज्ञोपवीत के धारण करने वाले तीसरे प्रकार के पात्रों का भी वर्णन मिलता है।

जिसने अपने पूर्वभव के पुण्योदय से ऊँचगोत्र के द्वारा विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति में जन्म धारण किया है, परन्तु मिथ्यात्व के उदय से गृहीत मिथ्यादृष्टि (मिथ्याकर्म को पालन करने वाले विशुद्ध कुलोत्पन्न ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) हो रहे हैं-ऐसे भव्यजीवों को धर्मदेशनादि कारणों से सत्य धर्म की प्रतीति (दृढ़ श्रद्धा) हो गयी हो तो वह मिथ्याधर्म का परित्याग कर जिनागम के अनुसार अपने समस्त संस्कार कर संस्कृत होता है। ऐसे पात्रों के लिये संस्कारों की विधि अन्य दोनों प्रकार के पात्रों से पृथक् है। जैसे विशुद्ध कुल में जन्मा हुआ (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकुल में से) भव्य मिथ्याधर्म का परित्याग कर जैनागम के अनुसार अपने समस्त संस्कार कराता है और अपनी पूर्व विवाहिता स्त्री के भी समस्त संस्कार कराता है। उस पूर्व विवाहिता

अपनी स्त्री के साथ पुनर्विवाह जैनसंस्कार और क्रियामन्त्रों के द्वारा करता है। तब वह अपनी जाति के जैनों में सम्मिलित होता है, अन्य जातियों में नहीं। इस वर्णलाभक्रिया का वर्णन आगम में स्पष्टरूप से पाया जाता है।

इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करने वाले तीन प्रकार के पात्र हैं और तीनों के लिये पृथक्-पृथक् विधि आगम में बतलायी है, उसका संक्षेप से विवरण यहाँ पर किया जाता है।

प्रथम पात्र के लिये यज्ञोपवीतसंस्कार-विधि

क्रियोपनीतिर्नामास्य, वर्षेगर्भाष्टमे मता।
यत्रापनीतकेशस्य मौजीसद्व्रतबन्धना।।१०४
कृतार्हत्पूजनस्यास्य, मौजीबन्धो जिनालये।
गुरुसाक्षि विधातव्यो-व्रतार्पणपुरस्सरम्।।१०५
शिखी सितांशुकः सान्तर्वासा निर्वेषविक्रियः।
व्रतचिह्नं दधन्सूत्रं, तदोक्तो ब्रह्मचार्यसौ।।१०६
व्रतचर्यामतो वक्ष्ये, क्रियामस्योपविभूतः।
कटचूरूरः शिरोलिङ्गमनूचान व्रतोचितम्।।१०९
कटिलिङ्ग भवेदस्य, मौजीबन्धोत्रिभिर्गुणैः।
रत्नत्रितय शुद्ध्यङ्गं, तद्धि चिह्नं द्विजन्मनाम्।।११०
तस्येष्टमरुलिङ्गं च, सुधौतसितशाटकम्।
आर्हतानां कुलं पूतं, विशालं चेति सूचने।।१११
उरोलिङ्गमथास्य स्याद्, ग्रथितं सप्तभिर्गुणैः।
यज्ञोपवीतकं सप्तपरमस्थान सूचकम्।।११२
शिरोलिङ्गं च तस्येष्टं, परं मौण्ड्यमनाविलम्।
मौण्ड्य मनोवचः कायगतमस्योपबृंहयत्।।११३
एवं प्रायेण लिङ्गेन, विशुद्धं धारयेत् व्रतम्।
स्थूलहिंसा विरत्यादि, ब्रह्मचर्योपबृंहितम्।।११४

(आदिपुराण = ३८/१०४ से १०६ और १०९ से ११४)

भावार्थ :- प्रथम पात्र अपने गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीतसंस्कार कराता है। उस समय वह अपने शिर के केशों का मुण्डन करता है और मौजीबन्धन (मूंज की करधनी) धारण करता है। परम पूज्य श्री अरिहन्त भगवान की पूजा कर मन्दिर में मौजीबन्धन की विधि

गुरु के द्वारा व्रतग्रहणपूर्वक करता है। अब से यह ब्रह्मचर्य अवस्था में रह कर विद्याभ्यास करने के लिये गुरुकुल में वास करता है। इसीलिये इसके विद्यासमाप्तिपर्यन्त वेषभूषा और दूसरों को देखते ही यह प्रतीत हो जावे कि यह विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी है। इसीलिये नीचे लिखे चिह्नों को विद्यासमाप्तिपर्यन्त नियमपूर्वक धारण करता है। किसी भी विशेष कारण के उपस्थित होने पर यह वेषभूषा और ब्रह्मचारी के चिह्नों को परित्याग नहीं करता।

यह ब्रह्मचारी चोटी रखता है और बाकी सिर के केशों का मुण्डन कराता है। धोती-दुपट्टा सफेद रखता है और विकृत भेष का परित्याग करता है। सिले हुये वस्त्र, गृहस्थों के समान विकार को उत्पन्न करने वाले वस्त्रों को वह नहीं पहनता। इस प्रकार के व्रतों का निरन्तर स्मरण करने के लिये वह पवित्र यज्ञोपवीत धारण करता है। इस प्रकार यज्ञोपवीत को धारण करने से ही वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

इस प्रकार विद्याभ्यास करने वाले सभी ब्रह्मचारियों का वेष एक-सा होता है और वे निम्नलिखित वेष से रहते हैं। कटिचिह्न, उरःचिह्न और शिरोलिंग ये तीन चिह्नों से अपने व्रतों को प्रकट करते रहते हैं।

कटिलिंग में मूंज की कंधोनी रखते हैं और उरलिंग (छाती का चिह्न) रत्नत्रय को प्रकट करने वाला यज्ञोपवीत होता है और धुली हुई सफ़ेद धोती दुपट्टा पहनते हैं। इस यज्ञोपवीत रखने से उन्होंने (ब्रह्मचारियों ने) अरिहन्त भगवान के पवित्र कुल को (मोक्षमार्ग को) धारण किया है-ऐसा प्रगट रूप में वे सूचित करते हैं। यह सात लड़ियों का यज्ञोपवीत खास ब्रह्मचारियों के लिये बनाया जाता है। सो इसके धारण करने से वे सप्त परम स्थान को प्राप्त होंगे- यह प्रत्यक्ष में प्रकट होता है। ऐसे ब्रह्मचारियों को चोटी होती है। इससे ये अपने मन-वचन-काय को सरल रखते हैं-यह सूचित होता है।

इस प्रकार शिरोलिंग, कटिलिंग और उरलिंग ये तीन चिह्न तथा सफेद धोती -दुपट्टा को पहनना ये इनके चिह्न हैं।

इनमें से बहुत से तो पाँच अणुव्रत धारण कर विद्याभ्यास करते हैं और कितने ही विशेष व्रत धारण करते हैं। वे ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं।

विद्याभ्यास करने वाले और गुरुकुल में रहने वाले ब्रह्मचारियों के अनेक भेद हैं, परन्तु उन सबका समावेश पाँच विभागों में होता है। अर्थात् पाँच प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं।

आश्रमाः सन्ति चत्वारो–जैनानां परमागमे।
ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्च सञ्ज्ञया।।
अदीक्षोपनयौ गूढावलम्बौ नैष्ठिको भिधाः।
सप्तमाङ्गे भिदाः सन्ति, पञ्चैते ब्रह्मचारिणाम्।।
वेषं विना समभ्यस्तसिद्धान्ता गृहधर्मिणः।
ये ते जिनागमे प्रोक्ता, अदीक्षा ब्रह्मचरिणः।।
समभ्यस्तागमा नित्यं, गणभृत्सूत्रधारिणः।
गृहधर्मरतास्ते, चोपनयब्रह्मचारिणः।।
कुमारश्रमणाः सन्तः, स्वीकृतागमविस्तराः।
बान्धवैर्धरणीनाथैर्दुःसहैर्वा परीषहैः।।
आत्मनैवाथवा त्यक्तपरमेश्वररूपकाः।
गृहवासरता ये स्युस्ते गूढब्रह्मचारिणः।।
पूर्वं क्षुल्लकरूपेण, समभ्यस्यागमं पुनः।
गृहीतगृहवासास्तेऽवलम्बब्रह्मचारिणः।।
शिखायज्ञोपवीताङ्कास्त्यक्तारम्भपरिग्रहाः।
भिक्षां चरन्ति देवार्चां, कुर्वते कक्षपट्टकम्।।
धवलारक्तयोरेकतरैकवस्त्रखण्डकम्।
धरन्ति ये च ते प्रोक्ता, नैष्ठिकब्रह्मचारिणः।।
नैष्ठिकेन विना चान्ये, चत्वारो ब्रह्मचारिणः।
शास्त्राभ्यासं विधायान्ते, कुर्वते दारसंग्रहम्।।
प्रथमाश्रमिणः प्रोक्ता, वक्ष्यन्ते त्वधुना मया।
द्वितीयाश्रमसंसक्ता, गृहिणो धर्मवासिताः।।

(धर्मसंग्रह श्रावकाचार = ६/१५ से २५)

चारित्रसार में ब्रह्मचारियों के भेद इस प्रकार बतलाये गये हैं–

तत्र ब्रह्मचारिणः पञ्चविधा–उपनयवालम्बादीक्षागूढनैष्ठिक भेदेन। तत्र उपनयनब्रह्मचारिणो गणधरसूत्रधारिणः (यज्ञोपवीतादिलिङ्गधारिणः) समभ्यस्तागमाः गृहधर्मानुष्ठायिनो भवन्ति। अवलम्ब ब्रह्मचारिणः क्षुल्लकरूपेण आगममभ्यस्य परिगृहीतवासा भवन्ति। अदीक्षाब्रह्मचारिणः वेषमन्तरेणाभ्यस्तागमा गृहधर्मनिरता भवन्ति। गूढब्रह्मचारिणः कुमारश्रमणाः सन्तः स्वीकृतागमाभ्यासा

बन्धुभिर्दुस्सहपरीषहैरात्मना नृपतिभिर्वा निरस्तपरमेश्वररूपा गृहवासरता भवन्ति। नैष्ठिक ब्रह्मचारिणः समधिगत शिखालक्षित शिरोलिङ्गा गणधरसूत्रो-पलक्षितोरोलिङ्गाः शुक्लड़ीक्तवसनखण्डकौपीनलाक्षेन कटिलिङ्गाः स्नातका भिक्षावृत्तयो देवतार्चनपरा भवन्ति।

भावार्थ :- उपनयन ब्रह्मचारी, अवलम्ब ब्रह्मचारी, अदीक्षा ब्रह्मचारी, गूढब्रह्मचारी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी, इस प्रकार ब्रह्मचारी के पाँच भेद हैं।

जो यज्ञोपवीतादि धारण कर विद्याभ्यास कर गृहस्थधर्म स्वीकार करता है, वह उपनयन ब्रह्मचारी है।

जो क्षुल्लक के रूप में यज्ञोपवीतादि लिंगसहित विद्याभ्यास कर गृहस्थधर्म को स्वीकार करता है, वह अवलम्ब ब्रह्मचारी है।

जो यज्ञोपवीतसहित अन्य वेष के बिना विद्याभ्यास कर गृहस्थधर्म को स्वीकार करता है, वह अदीक्षा ब्रह्मचारी है।

जो मुनि का स्वरूप धारण कर बन्धुओं के आग्रह से अथवा परीषह सहन नहीं होने से अथवा राजा के आग्रह से मुनिधर्म को छोड़ कर गृहस्थधर्म को स्वीकार करता है, उसे गूढब्रह्मचारी कहते हैं।

जो ब्रह्मचारी यज्ञोपवीतसहित, शिरोलिंगसहित रक्त अथवा सफेद खण्डवस्त्र पहनता है, कौपीन रखता है, उसको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। इस ब्रह्मचारी को स्नातक भी कहते हैं। यह भिक्षावृत्ति करता है और देवता का पूजन करता है। इस ब्रह्मचारी के ग्यारह भेद माने गये हैं। उनकी पहचान के लिये क्रमसे १-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-और-११ यज्ञोपवीत दिये जाते हैं, सबको नहीं।

इस प्रकार पाँच प्रकार के ब्रह्मचारियों मे नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्त्री को स्वीकार नहीं करता। शेष श्रमण, मुनि ब्रह्मचारी, क्षुल्लक ब्रह्मचारी, उपनय ब्रह्मचारी, अदीक्षा ब्रह्मचारी ये चार प्रकार के ब्रह्मचारी व इनके अवान्तर भेद वाले ब्रह्मचारीगण अपने-अपने व्रतों को छोड़ कर स्त्री आदि गृहस्थधर्म को स्वीकार करते हैं।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी दो प्रकार के हैं। एक गुरुकुल में रहने वाले विद्याभ्यासी और दूसरे घर में रह कर प्रतिमाओं के व्रतों का पालन करने वाले। इनमे से प्रथम नैष्ठिक ब्रह्मचारी की पहिचान के लिये ग्यारह जनेऊ होते हैं और दूसरे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के दो ही यज्ञोपवीत (जनेऊ) होते हैं। प्रथम नैष्ठिक ब्रह्मचारी ग्यारह प्रतिमा के धारक होने पर देवार्चन आदि समस्त संस्कारकर्म करता है,

वस्तु-प्रतिवस्तु ग्रहण करता है, भिक्षावृत्ति करता है। इसीलिये इसे स्नातक कहते हैं। ये सफेद अथवा गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। इनका वस्त्र कौपीन और खण्डवस्त्र होता है। कहा है-

नैष्ठिक ब्रह्मचारिणः समधिगतशिखालक्षितक्षिरोलिंङ्गा गणधर सूत्रोपलक्षितो-रोलिङ्गाः शुक्लड़ीक्तवसनखण्डकौपीनलक्षितकटिलिङ्गाः स्नातका भिक्षवृत्तयो देवतार्चनापरा भवन्ति।

(चारित्रसार)

आचार्यश्री जिनसेन जी महाराज ने लिखा है-

सप्तमोपासकाद्यास्ते, सर्वेऽपि ब्रह्मचारिणः।
गार्हपत्याभिधं पूर्वं, परमाहवनीयकम्।
दक्षिणाग्निं ततोऽन्यस्य, सन्ध्यासु तिसृषु स्वयम्।।
तच्छिखित्रय सानिध्ये, चक्रमातपवारणम्।
जिनेन्द्रप्रतिमाश्चावस्थाप्य मन्त्रपुरस्सरम्।।
तास्त्रिकालं समभ्यर्च्य, ग्रहस्थैर्विहतादरः।
भवताचिथयोयूषमित्यापचख्युरुपासकान्।।

(आदिपुराण)

भावार्थ :- सप्तम उपासक हो, आदि से लेकर ग्यारह प्रतिमा का धारक, समस्त नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण गार्हपत्य-आहवनीय और दक्षिणाग्नि, इन तीनों प्रकार की अग्नि को स्थापन कर समीप में चक्र-छत्र आदि स्थापन कर श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को मन्त्रपूर्वक त्रिकाल पूजा करें। ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारीगणों का आदर-सत्कार गृहस्थों को करना चाहिये। ये ब्रह्मचारीगण अतिथि हैं। सो दान-मान से सत्कार करना चाहिये-ऐसा उपदेश श्रावकों को इन्द्र ने दिया।

प्रश्न :- आदिपुराण में ग्यारह जनेऊ का विधान है। वह विधान किनके लिये हैं?

समाधान :- ग्यारह जनेऊ पहनने का नियम गुरुकुल में रहने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिये है। उनकी भिन्न-भिन्न पहचान के लिये ग्यारह जनेऊ दिये हैं, परन्तु अन्य समस्त ब्रह्मचारी और गृहस्थ दो ही जनेऊ पहनते हैं। प्रतिमाधारक नैष्ठिक भी दो ही जनेऊ पहनता है। भरत महाराज ने ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को ही ग्यारह जनेऊ दिये, न कि गृहस्थों को।

आचार्यश्री जिनसेन जी महाराज ने लिखा है-

तेषां कृतानि चिह्नानि, सूत्रैः पद्माह्वयन्निधेः।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः।
गुणभूमिकृतादभेदात्, क्लृप्तयज्ञोपवंतिनाम्।।

(आदिपुराण)

इस ग्रन्थ की कर्णाटक-टिप्पणी में लिखा हुआ है कि-

गुणभूतिकृताद्भेदात् क्लृप्रयज्ञोपवीतिनां गुणभूमि कृतात दार्शनिकादि गुणनिलयविहितात् क्लटप्तः कृतः दानपानादिसंस्कारैः वस्त्रादिदानसद्वचनादि सत्कारैः उपात्तैः स्वीकृतैः।

भावार्थ :- भरत महाराज ने पद्मनिधि से एक प्रतिमा से लेकर ग्यारह प्रतिमाधारक नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को उनको पहचानने के लिये एक से ग्यारह यज्ञोपवीत दिये। इस श्लोक में गुणभूमि कृताद्भेदात् इस पद की टीका दार्शनिक आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी प्रतिमाधारक, ऐसा अर्थ लिखा है। इसीलिए वे हरित अंकुर पर नहीं गये। अन्य ब्रह्मचारी अथवा गृहस्थों को दो ही जनेऊ दिये जाते हैं।

एकाद्येकादशाङ्गानि, दत्तान्येभ्यो भयाविभो।
व्रतचिह्नानि सूत्राणि, गुणभूमिविभागतः।।

(आदिपुराण)

भावार्थ :- भरत महाराज श्री समवसरण में श्री ऋषभदेव भगवान से कहते हैं कि हे प्रभो! मैंने दार्शनिकादि प्रतिमा के गुणों के भेद से आरम्भ कर ग्यारह जनेऊ व्रत के चिह्नस्वरूप दिये हैं।

इन सब प्रमाणों से ग्यारह जनेऊ का धारण करना गुरुकुल में विद्याभ्यास करने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारी गणों को बतलाये हैं, अन्य को नहीं। अन्य सब को दो ही यज्ञोपवीत धारण किये जाते हैं।

आयुःकामः सदा कुर्यात्, द्वित्रिः यज्ञोपवीतकम्।

भावार्थ :- आयु की इच्छा रखने वाला दो यज्ञोपवीत ही धारण करें।

यह विषय आगे स्पष्ट किया जायेगा।

उपर्युक्त वर्णन से ग्यारह जनेऊ पहनने की शंका का निरस्त हो जाती है।

प्रश्न :- गुरुकुल में विद्याभ्यास करने वाले ब्रह्मचारी कौन-कौनसे काम नहीं करता?

दन्तकाष्ठग्रहोनाम्य, न ताम्बूलं न चाञ्जनम्।
न हरिद्रादिभिः स्नानं, शुद्धस्नानं दिनं प्रति।।
न खट्वाशयनं तस्य, नान्याङ्गपरिघट्टनम्।
भूमौ केवलमेकाकी, शयीत व्रतशुद्धये।।
यावद्विद्यासमाप्तिः स्यात्तावदस्येदृशं व्रतम्।

भावार्थ :- ब्रह्मचर्य अवस्था में उपनयादि समस्त प्रकार के (पाँच प्रकार के) ब्रह्मचारीगण लकड़ी का दाँतोन नहीं करें, पान का भक्षण नहीं करें, इसी प्रकार उबटन, खाट पर शयन करना, दूसरों के साथ अंग से अंग लगा कर शयन करना आदि कार्य नहीं करें। केवल जमीन में एकाकी शयन करें और शुद्ध जल से प्रति दिन स्नान करें-यही उनकी व्रतचर्या है।

जब तक ये (पाँचों प्रकार के) ब्रह्मचारीगण गुरुकुल में रह कर विद्याभ्यास करे, तब तक यह व्रतचर्या इनको नियम से पालन करनी होगी। विद्यासमाप्ति के पश्चात् जब ये ब्रह्मचारी (नैष्ठिक को छोड़ कर उपनय, अवलम्ब, अदीक्षा और गूढ ब्रह्मचारी) गृहस्थधर्म को स्वीकार करते हैं। तब उपर्युक्त दन्तकाष्ठग्रह आदि समस्त व्रतचर्या का गुरुसाक्षी से परित्याग करते हैं। ब्रह्मचर्य अवस्था की समस्त व्रतचर्या का परित्याग कर गृहस्थ की परिचर्या को गुरुसाक्षी से धारण करते हैं।

प्रश्न :- गृहस्थधर्म स्वीकार करने पर क्या वे ब्रह्मचारीगण यज्ञोपवीतादि लिंगों का परित्याग करते हैं?

समाधान :- कितने ही ब्रह्मचारी मुनिरूप का परित्याग कर गृहस्थ होते हैं, कितने ही क्षुल्लकरूप का परित्याग कर गृहस्थ होते हैं और कितने ही उपनय आदि अवस्था का परित्याग कर गृहस्थ होते हैं। सो वे सब दन्तकाष्ठग्रह हरिद्रालेपन आदि के साथ अणुव्रत और महाव्रतों का परित्याग करते हैं, परन्तु उरोलिंग (यज्ञोपवीत) आदि का परित्याग नहीं करते तथा गृहस्थ के योग्य व्रतों को धारण करते हैं।

सिद्धविद्या ततो मन्त्रैरेभिः कर्मसमाचरेत्।
शुक्लवासाः शुचियज्ञोपवीत्यव्यग्रमानसः।।
सूत्रं गणधरै र्इर्दृब्धं व्रतचिह्नं नियोजयेत्।
मन्त्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः।।

भावार्थ :- जो विद्या पढ़ने के पश्चात् शान्त मन से सफेद वस्त्रों के साथ यज्ञोपवीत को धारण करने वाले हैं, उस यज्ञोपवीत को ही वे गृहस्थावस्था में अपने व्रत के चिह्न की नियोजना करें। ऐसे मन्त्र से पवित्र द्विज गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत के धारक कहलाते हैं।

इन दोनों श्लोकों का अभिप्राय यह है कि गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत रखना ही द्विज का व्रतचिह्न है। विद्या पढ़ने के पश्चात् गृहस्थावस्था के व्रतों का यज्ञोपवीत ही चिह्न माना है।

इसीलिये इन श्लोकों से यह तो स्पष्टतापूर्वक घोषणा है कि विद्या पढ़ने के पश्चात् यज्ञोपवीत नहीं छूटता।

ब्रह्म सूरिकृत त्रिवर्णाचार में लिखा है कि-

रत्नत्रयात्मकं पूतं, यज्ञसूत्रं सुनिर्मलम्।
हरिद्राग्रन्थसारक्तमुरोल्लिङ्गं प्रकल्पयेत्।।
स पश्चाक्षतविक्षेपफलसंयुतमञ्जलिम्।
तस्याचार्यः स्वहस्ताभ्यां, गृहीन्वेवमुपादिशेत्।।
मद्यमांसमधुद्यूतरात्रिभुक्त्यादि वर्जयेत्।
वटादिक्षीरवृक्षाणां, फलमन्यत्सजन्तुकः।।
पटोलवदहालाक, कलिङ्गानां फलानि च।।
पुष्पशाकं शिलीन्द्रं च, लसुनं हिङ्गु-मूलकम्।
नागवल्यादिकं दूष्यं, पररुणान्नादि भोजनम्।।
वत्सोत्पत्तेः समारभ्य, पक्षात्प्रारदुग्ध दुग्धकम्।
गुरुरित्थं व्रतं दत्वा, रहो मन्त्रमुपादिशेत्।।

भावार्थ :- गुरु (आचार्य) अपने हाथ से उस ब्रह्मचारी को गृही बनाने की क्रिया करे- सबसे प्रथम हलदी में रंग कर पवित्र रत्नत्रयस्वरूप यज्ञोपवीत पहनावे। फिर उस गृहस्थ (नवीन गृहस्थ) के दोनों हाथों में चावल और फल देकर गृहस्थधर्म का उपदेश देवे और तू आज से गृहस्थ हुआ-ऐसा उपस्थित जनता के समक्ष प्रकट करे तथा उसको आठ मूलगुण धारण करावे एवं अभक्ष्य पदार्थों का परित्याग करावे। एकांत में गृही बनने के मन्त्रों को क्रियापूर्वक करे।

यही बात आदिपुराण में बतलायी गयी है-

ततोप्यूर्ध्वं व्रतं तत्स्याद्, यन्मूलं गृहमेधिनाम्।
सूत्रमौपासिकं चास्य, स्यादाधेयं गुरोर्मुखात्।।

मधुमांसपरित्यागः, पञ्चोदुम्बरवर्जनम्।
हिंसादिविरतिश्चास्य, व्रतं स्यात्सार्वकालिकम्।।
व्रतावतरणं चेदं, गुरुसाक्षी कृतार्चनम्।
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वमथवा षोडशात्परम्।।

(आदिपुराण)

यह ब्रह्मचारी बारह वर्ष की अवस्था में समस्त प्रकार की विद्या की समाप्ति करता है अथवा सोलह वर्ष की अवस्था में समस्त विद्याओं का अभ्यास पूर्ण कर लेता है। विद्याभ्यास की समाप्ति पर गुरु के द्वारा गृहस्थधर्म को स्वीकार करता है। गुरु उस नवीन गृहस्थ को सबसे प्रथम श्रावक के मुख्य चिह्नरूप यज्ञोपवीत मन्त्रपूर्वक देते हैं और आठ मूलगुण धारण कराते हैं। किसी-किसी को पाँच अणुव्रत भी प्रदान करते हैं। गृहस्थधर्म की यही चर्या है।

इसीलिये ब्रह्मचर्यावस्था का परित्याग करने पर गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत नहीं रहता है-ऐसा मानना सर्वथा मिथ्या है।

इस विषय में एक जबर्दस्त प्रमाण यह भी है कि जब यह गृहस्थ गृहस्थाचार्य पद को प्राप्त होता है, उस समय में उसके यज्ञोपवीत नियमपूर्वक रहता है।

क्रियाकलापेनोक्तेन, शुद्धिमस्योपविभ्रतः।
उपनीतिरनूचानयोग्यलिङ्गग्रहो भवेत्।।
उपनीतिर्हि वेषस्य, वृत्तस्य समयस्य च।
देवतागुरुसाक्षि स्याद्, विधिवत्प्रतिपालनम्।।
शुक्लवस्त्रोपवीतादि, धारणं वेष उच्यते।
आर्यषट्कर्मजीवित्वं, वृत्तमस्य प्रचक्ष्यते।।
जैनोपासकदीक्षा स्यात्समयः समयोचितम्।
दधतो गोत्रजात्यादि, नामान्तरमतः परम्।।
ततोऽयमुपनीतः सन्, व्रतचर्या समाश्रयेत्।
सूत्रमौपासिकं सम्यगभ्यस्य ग्रन्थतोऽर्थतः।।

(आदिपुराण = ३९/५३ से ५७)

भावार्थ :- गृहस्थाचार्य बनने पर भी गुरुदेव की साक्षी से गृहस्थधर्म को स्वीकार करने के समय ग्रहण किया हुआ यज्ञोपवीत इसके नियम से होगा, क्योंकि गुरु और जिनेन्द्र देव की साक्षी से ग्रहण किया हुआ यज्ञोपवीत और व्रत विधिपूर्वक पालन करना ही सम्यग्दृष्टि का कार्य है।

गृहस्थाचार्य का चिह्न भी यज्ञोपवीत है। सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीत ही उसका वेष है। गृहस्थाचार्य अन्य श्रावकों को यज्ञोपवीतादि विधान करता है। गृहस्थों के समस्त संस्कार कराता है और षट्कर्मों से आजीविका करता है। इसको श्रावकाचार का परिपूर्ण ज्ञान होता है।

प्रश्न :- यज्ञोपवीत का परित्याग कब होता है?

समाधान :- गृहस्थधर्म की अवस्था में यज्ञोपवीत का परित्याग सर्वथा नहीं होता। मरणपर्यन्त यज्ञोपवीत रखना पड़ता है। जो गृहस्थ गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत को धारण कर परित्याग कर देवें, वह मिथ्यात्वी शूद्र के समान है।

बृहत् जिनदीक्षाविधि में बतलाया है कि-

अथ–निक्षिप्य मस्तकमध्ये चतुर्दिक्षु केशोत्पाटनमन्त्रेण लुञ्चनं कुर्यात्। मन्त्र ॐ ह्रां श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं स्वाहा। नन्तरं मध्य पूर्व–दक्षिण–पश्चिम–उत्तरक्रमेण मन्त्रोच्चारपूर्वकं केशलुञ्चनं कुर्यात्। इति लुञ्चनान्ते बृहत्सिद्धभक्तिं विधाय निष्ठाप्य च वस्त्राभरणयज्ञोपवीतादिकं परित्यज्येत्।

भावार्थ :- ऐलकादि, मुनि अवस्था धारण करते समय ही यज्ञोपवीत का त्याग करते हैं। केशलोंच होने के पश्चात् ही यह क्रिया होती है। इसके प्रथम गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत का मरणपर्यन्त त्याग नहीं होता।

इत्यात्मनो गुणोत्कर्ष, ख्यापयन् न्यायवर्त्मना।
गृहमेधी भवेत्प्राप्य, सद्गृहित्वमनुत्तरम्।।

(आदिपुराण)

भावार्थ :- यज्ञोपवीत से ही अपने गृहस्थ के गुण को प्रकट करता हुआ वह गृहस्थ सद्गृही कहलाता है।

यह आदिपुराण का श्लोक भली-भाँति स्पष्ट रूप से कहता है कि जिस गृहस्थ के जनेऊ है, वही सद्गृहस्थ और जिसके जनेऊ नहीं है, वह सद् गृहस्थ भी नहीं है। इन सब प्रमाणों से यज्ञोपवीत गृहस्थ अवस्था में मरणपर्यंत नियम से रहता है।

यज्ञोपवीत धारण करने वाला द्वितीय पात्र

जो गुरुकुल में विद्याभ्यास का इच्छुक नहीं है, किसी विशेष कारण से घर का परित्याग करने में असमर्थ है, विशुद्ध जाति में उत्पन्न हुआ है तथा जैनकुल में जिसने जन्म लिया है, परन्तु किसी विशेष कारणों से जिसके

यज्ञोपवीत आदि समीचीन संस्कार नहीं हुये हैं-ऐसे समस्त जीवों को दूसरा पात्र माना गया है।

यद्यपि प्रथम और द्वितीय, इन दोनों प्रकार के पात्रों को यज्ञोपवीत का धारण आठवें वर्ष में ही करना चाहिये, जैसा कि श्री ऋषभदेव भगवान ने अपने समस्त पुत्रों को कराया था। भरत महाराज गुरुकुल में नहीं रहे थे तो भी उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था।

अन्नप्राशनचौलोपनयनादीननुक्रमात्।
क्रियाविधीन् विधानज्ञः, सृष्टैवास्य निसृष्टवान्।।

(आदिपुराण = १५/१६४)

भावार्थ :- श्री ऋषभदेव भगवान ने भरत के अन्नप्राशन, चौलकर्म और यज्ञोपवीतादि समस्त संस्कार स्वयं किये।

प्रश्न :- भरत महाराज के ये संस्कार कब हुये?

इस प्रश्न का समाधान आदिपुराण में आगे के श्लोक में दिया है।

ततः क्रमभुवो बाल्यकौमारान्त भुवो भिदाः।

(आदिपुराण = १५/१६५)

भावार्थ :- श्री ऋषभदेव भगवान ने भरत के बाल्यकाल के आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार कराया।

इसीलिये यज्ञोपवीत धारण करने का समय आठवाँ वर्ष है। तथापि द्वितीय पात्र के लिये यह नियम अपवाद रूप है। द्वितीय पात्र यदि आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत धारण नहीं करे तो उसे अपने विवाहसंस्कार पर यज्ञोपवीत धारण कर लेना चाहिये। अब भी बहुत से जैनियों में विवाह के समय यज्ञोपवीत धारण की परम्परा है। परन्तु दुःख है कि विवाह के पश्चात् वे निकाल कर फेंक देते हैं। यह अज्ञानता ही यज्ञोपवीतादि संस्कारों का लोप करने का प्रधान कारण है। विशेष आश्चर्य यह है कि विवाहसंस्कार भी जैनविधि से नहीं होता। इसीलिये सब संस्कार ही लोप हो गये हैं।

कदाचित् विवाहसंस्कार पर यज्ञोपवीत धारण नहीं किया हो तो गुरु का समागम मिलने पर यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। परन्तु यज्ञोपवीत धारण किये बिना सर्वथा किसी को भी नहीं रहना चाहिये। जो जैन यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं, वे जैनागम को नहीं मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं और उनके

आचरण शूद्र के समान ही है, चाहे वह युवा हों, चाहे वह वृद्ध हों अथवा चाहे कुमार हों। सब को गुरु के हाथ से यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और उसको जन्मपर्यन्त रखना चाहिये।

भरत महाराज ने मुनि अवस्था धारण करने पर ही यज्ञोपवीत का परित्याग किया था, गृहस्थावस्था में नहीं।

जब भरत महाराज दिग्विजय कर और राज्य की व्यवस्था कर समवसरण में गये, वहाँ पर वे ऋषभदेव भगवान के द्वारा दिये हुये यज्ञोपवीत को धारण किये हुये थे।

आजानुलम्बिना ब्रह्मसूत्रेण विबभौ विभुः।
हेमाद्रिरिव गङ्गाम्बुप्रवाहेण तटस्पृशा।।

(आदिपुराण)

भावार्थ :- भरत महाराज के जानुपर्यन्त यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था।

इसीलिये यज्ञोपवीत मरणपर्यन्त रखना चाहिये।

यज्ञोपवीत को धारण करने वाले तृतीय पात्र

तीसरे पात्र के लिये संस्कार कराने का कोई भी समय नियत नहीं है, क्योंकि जब उसके पुण्यकर्म का उदय आता है, पाँच लब्धि द्वारा सम्यग्दर्शन धारण करने के लिये सन्मार्ग की प्राप्ति हो और मिथ्याधर्म को छोड़ कर जैनधर्म को स्वीकार करे, तब ही उसके सब संस्कार एक साथ किये जाते हैं।

इस प्रकार वर्णलाभ के द्वारा जैनसंस्कार कराने वाले भव्य जीव यज्ञोपवीत धारण करते हैं।

व्रतचिह्नं भवेदस्य, सूत्रं मन्त्रपुरःसरम्।
सर्वज्ञाज्ञाप्रधानस्य, द्रव्यभावविकल्पितम्।।
यज्ञोपवीतमस्य स्याद्-द्रव्यतस्त्रिगुणात्मकम्।
सूत्रमौपासिकं तु स्याद्, भावरूढैस्त्रिभिर्गुणैः।।
यदेव लब्धसंस्कारः, परं ब्रह्माधिगच्छति।

(आदिपुराण = ३८/९४ से ९६)

भावार्थ :- वर्णलाभ क्रिया होने के पश्चात् भव्यजीव गृहस्थ के यज्ञोपवीत मन्त्र और क्रिया पूर्वक दिया हुआ वह उसको सर्वज्ञदेव की आज्ञा की स्वीकारता (रत्नत्रय की प्राप्ति को) द्रव्यरूप से यह तीन प्रकार का यज्ञोपवीत ही व्यक्त करता है। यद्यपि इस श्रावक के

भावात्मक रत्नत्रयरूप यज्ञोपवीत है ही, परन्तु द्रव्यरूप बाह्य (शरीर पर) यज्ञोपवीत से ही भावसूत्र का उपागम होता है। इस प्रकार बाह्य-अन्तरंग यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्रह्मतत्त्व (परमात्मपद) को प्राप्त होते हैं।

यज्ञोपवीत का कैसा दिव्य माहात्म्य है कि जिसके प्रभाव से परमात्मपद प्राप्त हो जाता है।

ऐसा माहात्म्य अन्य किसी में नहीं है।

प्रश्न :- यज्ञोपवीत के बिना मुनियों को आहारदान करने का अधिकार गृहस्थ को है अथवा नहीं?

समाधान :- यज्ञोपवीत को धारण किये बिना गृहस्थ मुनियों को आहारादि दान नहीं कर सकता।

भक्तिमान् सरलो ज्ञानी, सुदृष्टिर्विनयान्वितः।
मद्यमांसमधुत्यागी, पञ्चोदुम्बरवर्जितः।।
त्रिवर्णस्तु कुलाचारपालनोद्यममानसः।
उपनीत्यादिसंस्कारविहितो मधुराशयः।।
आहारादिक्रियाभिज्ञः, शुचिः पूतक्रियाग्रणी।
देशकालागमद्रव्यविधिज्ञा धौतवस्त्रभाक्।।
देवशास्त्रगुरुणां ह्युपासको धर्मवत्सलः।
औदार्यादिगुणोपेतो–विगर्वो लाभवर्जितः।।
इत्यादि सुगुणोपेतो–दाता स्यात् सुप्रसन्नवाक्।

भावार्थ :- दाता भक्तिमान हो, सरल हृदय वाला हो, सम्यग्दृष्टि हो, विनयवान हो, आठ मूलगुण का धारक हो, त्रिवर्ण (ब्राह्मण•क्षत्रिय-वैश्य) में से किसी एक वर्ण का हो, जैनधर्म के अनुसार कुलाचार पालने में दत्तचित्त हो, मधुराशयी हो, यज्ञोपवीत आदि संस्कार वाला हो, आहारादि क्रियाओं को जानने वाला हो, पवित्र हो, पवित्र क्रिया के करने में अग्रसर हो, देश-काल-आगम-द्रव्य और विधि को जानने वाला हो, पवित्र वस्त्रों का धारक हो, देव-शास्त्र और गुरु की श्रद्धापूर्वक उपासक हो, धर्म में वात्सल्य भाव रखता हो, उदारतादि गुणों का धारण करने वाला हो, अभिमान से रहित हो, लोभ से रहित हो और प्रसन्न वचन वाला हो, इत्यादि गुणों सहित होता है।

इससे यज्ञोपवीतरहित जीव के द्वारा दान देना आगम के सर्वथा विरुद्ध है। मुनिगण भी यज्ञोपवीतरहित श्रावक के हाथ से आहार आदि ग्रहण नहीं करते

हैं। जो मुनियों को आहार देने में यज्ञोपवीत की क्या आवश्यकता है? ऐसा कहते हैं, वे आगम को नहीं जानते। अथवा, मोहनीयकर्म के उदय से उनको जिनागम की सत्य बात रुचिकर नहीं होती। सच तो यह है कि मिथ्यात्व का प्रभाव जीवों को विलक्षण होता है। उसके प्रभाव से ही जीव कुतत्त्व को तत्त्व और तत्त्व को कुतत्त्व मानता है।

इज्यादत्त्यादिकर्माणि, यस्य मूलगुणान्वितः।
गृही सोऽत्र प्रशस्योऽस्ति, ससंस्कारः ससूत्रकः।

भावार्थ :- इज्या (जिनपूजा), दत्ति (दान) आदि षट्कर्म जिसके मुख्य हों तथा आठ मूल गुण को पालन करने वाला हो। समस्त संस्कारों को करने वाला हो यज्ञोपवीत सहित हो उसको ही गृहस्थ कहते हैं ऐसे गृहस्थ ही दान दे सकते हैं।

मूलगुणसमोपेतः, कृतसंस्कारो दृक्शुचिः।
इज्यादिषट्कर्मकरो, गृही सोऽत्र ससूत्रकः।।
देवपूजा गुरुसेवा, दत्तिः स्वाध्यायः संयमम्।
दयैतानि सुकर्माणि, गृहिणां सूत्रधारिणाम्।।

भावार्थ :- जो मूलगुणों से सहित हो, संस्कारों को करने वाला हो, सम्यग्दृष्टि हो, पवित्र हो, देवसेवादि षट्कर्मों को करने वाला हो-ऐसा गृहस्थ यज्ञोपवीत सहित होता है।

देवसेवा, गुरु की उपासना, दान, स्वाध्याय, संयम और दया ये छह कर्म यज्ञोपवीत धारक गृहस्थ के हैं।

इस प्रकार दानशासन ग्रन्थ के अनुसार मुनि को आहार देने वाला दाता यज्ञोपवीत वाला ही हो सकता है। जिसके यज्ञोपवीत नहीं है, वह वास्तविक शूद्र के समान है। उसका एक भी धार्मिक कृत्य यथेच्छ और यथेष्ट फलदायक नहीं हो सकता।

यहाँ यह भी जानना चाहिये कि यज्ञोपवीत धारण करने के लिये सामान्य रूप से आठ मूलगुणों का धारक होना आवश्यक है। मूलगुणों का धारक पाक्षिक श्रावक यज्ञोपवीत से विभूषित होकर दान-जिनपूजा आदि समस्त कार्य कर सकता है।

कितने ही मनुष्य यह कहते हैं कि यज्ञोपवीत धारण करने के लिये पाँच अणुव्रत को अवश्य ही धारण किया जाना चाहिये। उनको ये दानशासन का अध्ययन करना चाहिये।

स्मृतिग्रन्थों में पाक्षिक श्रावक को दान पूजा करने का अधिकारी बतलाया गया है। भगवान जिनसेनाचार्य ने भी गृहस्थ को पाँच अणुव्रत धारण करना ही चाहिये–यह नियम नहीं बतलाया। हिंसादि पाँच पापों का त्याग यज्ञोपवीत के समय बतलाया है, वह केवल गुरुकुल में अभ्यास करने वाले ब्रह्मचारी गणों के लिये हैं।

हाँ, जिसके परिणाम अधिक उदास हों, वे अपने मन से कुछ भी धारण कर लेवें। अभ्यासार्थ पाक्षिक श्रावक भी बारह व्रतों का पालन करता है। इसमें विरोध नहीं है।

कितने ही उदासीन मनुष्य यज्ञोपवीत को धारण करने से डरते हैं। उन्हें शास्त्रों के प्रमाणों को देख कर निःशंकित अंग का पालन करना चाहिये।

यज्ञार्थमेव सृजनादि चक्रे–
श्वरेण चिह्नं विधिभूषणानाम्।
यज्ञोपवीतं विततं हि रत्न–
त्रयस्य मार्गं विदधाम्यतोऽहम्।।
अन्यैश्चदीक्षां यजनस्य गाढं,
कुर्वद्भिरिष्टैः कटिसूत्रमुख्यैः।
सम्भूषणैर्भूषयतां शरीरं,
जिनेन्द्रपूजा सुखदा घटेत।।

भावार्थ :- पूजा को प्रकट करने वाले चक्रेश्वर ने श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिये विधिरूप भूषणों का चिह्न यज्ञोपवीत बतलाया है। रत्नत्रय के मार्ग रूप यज्ञोपवीत को मैं धारण करता हूँ। जिस प्रकार मैंने पूजा के लिये यज्ञोपवीत को धारण किया है, उसी प्रकार श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा की।

दीक्षा के लिये कटिसूत्र आदि अन्य (मुद्रिका, शेखर) आभूषणों से शरीर को भूषित (इन्द्रपद धारण कर) करने से भगवान की पूजा सुखद होती है। इसके बिना पूजा नहीं होती।

धौतवस्त्रं पवित्रं च, ब्रह्मसूत्रं च भूषणम्।
जिनपदार्चितं गन्धं, माल्यं धृत्वा जिनाच्यर्यते।।

भावार्थ :- धोये हुये शुद्ध वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण कर ही श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा करनी चाहिये।

पूजक को तिलक और माला भी पहरनी चाहिये।

इस श्लोक में स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है कि यज्ञोपवीत बिना पूजन नहीं होती।

रत्नत्रयमुरोलिङ्गं, ब्रह्मसूत्रं शिवप्रदम्।
यज्ञोपवीतमित्युक्तं, पवित्रं धार्यते मया।।

भावार्थ :- रत्नत्रय का चिह्न (उरोलिंग) यह यज्ञोपवीत मैं भगवान की पूजा के लिये धारण करता हूँ।

सङ्कल्प तत्सुखप्रते: पटुभिमवाप्य सूत्रत्रयं कमल सूत्रसमान कान्ति। रत्नत्रयाभिमतमात्तशिरोत्तरीयं धृत्वा पवित्रकलितं च करं करोमि।

(श्रीजिनेन्द्र भगवान की पूजा)

भावार्थ :- श्री जिनेन्द्र देव की पूजा के प्रारम्भ में मैं यज्ञोपवीत धारण करता हूँ और षोडश आभरणों से इन्द्रपद को प्राप्त करता हूँ।

इस श्लोक में यज्ञोपवीत को धारण करके ही पूजन करनी चाहिये-ऐसा बतलाया गया है।

जिसने संस्कारों की विशुद्धि द्वारा वर्णोत्तमता (सज्जातित्व) प्राप्त नहीं की है, वह कदापि श्रेष्ठ नहीं है। संस्कारविहीन (असज्जाति) मनुष्य अपनी आत्मा को शुद्ध नहीं कर सकता और न दूसरों को शुद्ध बना सकता है।

जिनके मन में संसार, शरीर और भोगों के प्रति अनास्था है, जिनका जिनवचनों के प्रति अनुराग है, जिनका मन करुणाभाव से आपूरित है और जो कषायों के उपशमन का प्रयत्न कर रहे हैं, वे जीव प्रयत्नपूर्वक जिनवचनों का परिपालन करते हैं। जिनेन्द्रवचनों के अनुरागी साधक अपने आचरण को उनके वचनों के अनुसार बनाने का प्रयत्न भी करते हैं। जब जिनवाणी यज्ञोपवीत का वर्णन ही रही है, तब उसका निषेध करने वाला सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र का प्रत्यनीक बन रहा है-यह स्वतः सिद्ध हो गया। इसे कलिकाल का प्रभाव ही कहना चाहिये।

अंकलीकर परम्परा का चतुर्थ-पट्टाधीश,
आचार्य सुविधिसागर

यज्ञोपवीत संस्कार

आवश्यक व्रत

यज्ञोपवीत धारण करने वाले मनुष्यों को कब से और कौन-कौन से व्रत पालन करने पड़ते हैं?

यज्ञोपवीत आठ वर्ष के बालक की अवस्था से धारण किया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की विशुद्ध कुल की विशुद्ध सन्तान को अपनी आठ वर्ष की अवस्था में आगम की विधि के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। जिसने आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत धारण नहीं किया हो, वह विवाह के समय यज्ञोपवीत को विविधपूर्वक धारण करें। जिसने किसी कारण से विवाह के समय भी विधिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण नहीं किया हो, उसको गुरु के समीप यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

गृहस्थों को किसी भी समय किसी भी कारण से यज्ञोपवीत धारण किये बिना एक क्षणमात्र नहीं रहना चाहिये। जिस गृहस्थ ने यज्ञोपवीत नहीं धारण किया है, वह दान देने और भगवान की पूजा करने का अधिकारी नहीं है। जनेऊ पहने बिना दान और भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिये। जो लोग जनेऊ (यज्ञोपवीत) धारण किये बिना भगवान की पूजा करते हैं, वे जिनागम की आज्ञा से बहिर्भूत हैं। कदाचित् कोई अज्ञान अथवा बिना विचारे यज्ञोपवीत धारण करने में दुराग्रह करते हैं और यज्ञोपवीत के धारण किये बिना ही भगवान की पूजा करते हैं, वे जिनागम की आज्ञा को नहीं मानने वाले होने से मिथ्यादृष्टि हैं।

यज्ञोपवीत के बिना गृहस्थ शूद्र के समान है। यद्यपि शूद्र कुल में जन्म नहीं हुआ है, तथापि संस्कारों का अभाव होने से वह एक प्रकार से शूद्र ही है।

इसीलिये सबको यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिये। यह विचार नहीं करे कि यज्ञोपवीत आठ वर्ष की आयु में धारण किया जाता है, मेरी आयु तो चालीस वर्ष की है। मैं तो पचास वर्ष का वृद्ध हूँ। अब यज्ञोपवीत धारण करने का क्या फल होगा? अपनी अवस्था कितनी ही क्यों न हो गई हो, परन्तु यज्ञोपवीत

अवश्य ही धारण करना चाहिये। यज्ञोपवीत के धारण किये बिना रहना है, वह जिनागम के विरुद्ध मनोनीत भावों से रहना है।

इसी प्रकार हमारे कुल में किसी ने आज तक जनेऊ नहीं पहना है। हम क्यों पहने? ऐसे मिथ्या विचारों के कारण यज्ञोपवीत धारण नहीं करना भी जिनागम की आज्ञा को नहीं मानना है।

यज्ञोपवीत की क्रिया हमसे पालन नहीं हो सकती। यज्ञोपवीत गृहस्थों से किस प्रकार धारण किया जाये? महान व्रत पालन करने वाले और महान पवित्र आचरण करने वाले ही यज्ञोपवीत धारण करते हैं-ऐसे विचार से जो गृहस्थ यज्ञोपवीत धारण नहीं करते, वे जिनागम के ज्ञान से रहित हैं। वे श्रावक की क्रिया के ज्ञान से रहित हैं। उनको श्रावक के आचरणों का परिज्ञान नहीं है। शास्त्रों के पढ़ लेने पर भी उनको शास्त्र का परिज्ञान नहीं है। स्वाध्याय करने पर भी वे स्वाध्याय के फल से रहित हैं।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य जीवों को यज्ञोपवीत धारण करते समय निम्नलिखित व्रत ग्रहण करने पड़ते हैं। इन व्रतों के धारण किये बिना यज्ञोपवीत धारण नहीं किया जाता।

१. मद्य-मांस-मधु का परित्याग करना।

२. बड़फल-पीपलफल-उदम्बरफल (गूलड़ी) पाकरफल और कटूम्बरफल (एक वृक्ष का फल होता है) इन पाँच फलों का परित्याग करना।

३. जिनदर्शन नित्य करना।

४. रात्रि में अन्नपदार्थ का सेवन नहीं करना।

५. पानी छान कर पीना।

६. मिथ्या देवों को कभी किसी कारण से नमस्कार नहीं करना, उनकी पूजन नहीं करना और उनकी मान्यता नहीं करना।

७. मिथ्याशास्त्रों का श्रद्धान नहीं करना और मिथ्या गुरु को नमस्कार नहीं करना।

८. अपनी शक्ति हो तो पाँच अणुव्रत धारण करना।

९. समस्त जीवों पर दयाभाव रखना।

ये व्रत आत्मकल्याण में साधक बनते हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि आगम में वर्णित है।

ब्रह्मसूरि जी ने लिखा है-

अथ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां गर्भाष्टमेब्दे-आषोडशवर्शाद् युगाब्दे वा माणवका-नुकूलशुभतिथौ पूर्वं चैत्यालये भगवदर्हतां महाभिषेकमेकादशविधार्चनं यन्त्रमण्डल-समाराधनं गृहे माणवकस्य स्नानालङ्करणमुचितासनोपवेशनम्। शिरसि दर्भैर्गन्धोदक-सेचनम्। शिखावशेषकेशवापनं पुनर्मङ्गलस्नानम्। अग्निसन्धुक्षणान्ता होमक्रिया। तदग्रे शुभमुहूर्त्ते मङ्गलस्तोत्राशीर्वादपठनपूर्वकशिरःस्पर्शनोपनीतक्रियाविधिः।

कौपीनेनान्तर्वासो निर्विकारोत्तरीयपरिधानम्। मौजीबन्धनं यज्ञोपवीतधारणम्। ब्रह्मग्रन्थियुतशिखायामर्हत्पादशेषधारणम्। शौचाचमनाद्याद्युपवेशनम्। आचमनप्रो-क्षणार्घ्यतर्पणानां मन्त्रतो विधापनमवशिष्टहोमक्रियानिर्वर्तनम्। पुण्याहवाचनं विभूत्या-बन्धुभिस्सह चैत्यालयगमनम्। त्रिवारचैत्यालयप्रदक्षिणा। अर्हत्श्रुतगुरुणामर्चनं प्रणमनं तत्रोचितोद्देशे पञ्चचूर्णविरचितसद्बीजाक्षर-संयुताग्निवाय्वम्बुभून-भोमण्डलानां मध्येऽक्षतविरचितस्वस्तिके सदर्भे पद्मासनेन कुमारविनिवेशनम्। तत्समीपे जलचन्दनाक्षतफलादिद्रव्यनिक्षेपणम्। परमगुरुणापि शिक्षकेणार्चनम् (?) द्विजोत्तमेन वा। सम्यग्दर्शनस्याणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रताना-मुपदेशनमागमोक्तप्रकारेण। मद्यमांसाद्यभोज्यानां वर्जनमस्यातिबालविद्याद्युपदेशनम्। शिरस्पर्शनपूर्वक-पञ्चगुरुमन्त्रोपदेशः। सामायिकाद्यनुष्ठानम्। त्रिसन्ध्याकालवन्दना च नित्यनैमित्तिक-पूजायाश्चोपदेशः।

शान्तिमन्त्रेण-अङ्गस्पर्शनम्। शिरसि सिञ्च्य पाणिना पञ्चगुरुमन्त्रस्थापनम्। तदापरमार्थद्विजत्वं विभ्राणेन कुमारेण सिद्धार्चनं, आचार्यपूजनं देवगुरुश्रुत-पितृशिक्षकज्येष्ठानां यथोचितवन्दना। स्वगृहगमनम्। भिक्षायाचनं भिक्षां देहीतिवचनेन भिक्षास्वीकारणं देवतातर्पणम्। बन्धुगृहलब्धवस्तुसुवर्णादिकं आचार्यसन्तर्पणम्। उपासकाध्ययनपुस्तकार्पण मेकादशनिलयोचितमारोपणमित्यादि।

(जिनसंहिता)

यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत धारण करने वाला भव्यजीव अपने बालों (क्षौरकर्म) को उस्तरा से बनवा कर शुद्ध हो मन के शल्यों को दूर कर जिनागम की श्रद्धा रख कर कुल की आम्नाय को पवित्र रखने के लिये और सज्जातित्व प्रकट करने के लिये यज्ञोपवीत धारण करने की विधि नीचे लिखे अनुसार करे।

क्षौरकर्म करा कर श्री जिनेन्द्रदेव का पंचामृताभिषेक विधिपूर्वक करे। कमर में मूंज की कन्धोनी पहने और सफेद धुले हुये धोती-दुपट्टे को पहने। यज्ञोपवीत का भगवान के गन्धोदक में अभिषेक करावे। यज्ञोपवीत को रत्नत्रय मान कर रत्नत्रय की पूजन (संक्षेप में) करे। अपने शरीर पर गन्धोधक भली-भाँति लगावें। शिर पर गन्धोदक का सिंचन करे। चन्दन से मस्तक पर स्वस्तिक बनावें और लघु हवन-शान्ति करके पुण्याहवाचन मन्त्र पढ़े।

इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करने की यह संक्षेप विधि है।

कदाचित् इतनी विधि भी न बन सके तो क्षौरकर्म करा कर श्री जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना चाहिये। अभिषेक में यज्ञोपवीत का रत्नत्रय का अभिषेक पाठ पढ़ते हुये अभिषेक करना चाहिये और नवीन धोती-दुपट्टा पहन कर गुरु से यज्ञोपवीत को ग्रहण करना चाहिये।

बालकों को आगम की विधि के अनुसार ही यज्ञोपवीत का संस्कार कराना चाहिये। विधिपूर्वक संस्कार किये बिना उन्हें कभी भी यज्ञोपवित धारण नहीं करना चाहिये।

वृद्ध और युवाओं को भी विधिपूर्वक यज्ञोपवीत-संस्कार कराने चाहिये। कदाचित् विधि न हो सके तो श्री जिनेन्द्र देव का अभिषेक कर गुरु से यज्ञोपवीत ग्रहण करना चाहिये।

एक बार यज्ञोपवीत-संस्कार कराने के पश्चात् फिर यज्ञोपवीत जन्मपर्यन्त धारण करना चाहिये। यज्ञोपवीत दो-चार दिवस अथवा महिनों के लिये नहीं पहना जाता। क्योंकि-

उपनीतिर्हि वेषस्य, वृत्तस्य समयस्य च।
देवतागुरुसाक्षि स्याद्विधिवत्प्रतिपालनम्।।

भावार्थ :- यज्ञोपवीत और यज्ञोपवीत धारण करते समय ग्रहण किये हुये व्रतों (जो देव और गुरु की साक्षी से ग्रहण किये हैं) को यावत् प्रतिपालन कराना चाहिये। देव और गुरु की साक्षी से ग्रहण किये हुये व्रत तथा यज्ञोपवीत को विधिपूर्वक पालन करना चाहिये।

ऐसा नहीं कि पूजा के समय यज्ञोपवीत धारण कर लिया और फिर छोड़ दिया। ऐसा करने वाले व्रतखण्डन करने से पाप के भागी होते हैं। व्रत का भंग करने को जिनागम में महान पाप माना है।

यज्ञोपवीत श्रावण शुक्ला पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) के दिन बदलना चाहिये। नवीन यज्ञोपवीत धारण करना और पुराना यज्ञोपवीत जलाशय में छोड़ना चाहिये। उस दिन भगवान श्री जिनराज का अभिषेक करें, रत्नत्रय की पूजा करें और लघु होम करें।

घर पर सूतक होने पर, मुर्दे को जलाने पर, कुटुम्ब में अतिशय समीपवर्ती सम्बन्धी की मृत्यु होने पर, बालक-बालिका का जन्म होने पर यज्ञोपवीत को बदल लेना चाहिये।

यज्ञोपवीत टूट जाने पर बदल लेना चाहिये।

अपवित्र और मलिन विष्ठा, मल-मूत्र-रक्त आदि का संसर्ग हो जाने पर यज्ञोपवीत बदल लेना चाहिये।

चाण्डालादि अस्पर्श जनता ने यज्ञोपवीत का स्पर्श कर लिया हो तो यज्ञोपवीत बदल लेना चाहिये।

स्पर्श शूद्र के साथ भूल अथवा अज्ञान से खान-पान हो गया हो तो प्रायश्चित्त ग्रहण करके यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार कराना चाहिये।

मद्यसेवी और मांसभक्षी के साथ भूल अथवा अज्ञान से खान-पान हो गया हो तो प्रायश्चित्त ग्रहण करके यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार कराना चाहिये।

यज्ञोपवीत के धारक भव्यजीव को शूद्र, पतित, जातिच्युत आदि निन्दित मनुष्य के साथ खान-पान व्यवहार नहीं करना चाहिये।

गौ, कुत्ता, बिल्ली, सर्प आदि पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने पर, भूल अथवा अज्ञान से हिंसा हो जाने पर प्रायश्चित्त विधि से शुद्धि करा कर गुरु से ही पुनः यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये।

यदि भावों की विशुद्धि न हो और जिनागम पर श्रद्धान न हो तो समाज उसको शूद्र के समान समझे।

यज्ञोपवीत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वंश के धारक जीवों को ही धारण करना चाहिये।

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि

(२८) ## यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्यात्माओं को सदैव यह विचार रखना चाहिये कि यज्ञोपवीत रत्नत्रय है और परम पवित्र है। यह श्री जिनेन्द्र भगवान की आज्ञास्वरूप है, सज्जाति की व्यक्तता करने के लिये मुख्य चिह्नस्वरूप है। यह व्रत रूप है। यह श्रावकधर्म का मूल चिह्न है। यह धर्म का बीज है। यह शुद्धि का परम पवित्र कारण है। यह मोक्षमार्ग की पात्रता का आदर्श नमुना है। यह दान पूजादि सत्कर्म एवं सदाचार में प्रवर्त्तन कराने का मूल निमित्त कारण है। इसीलिये यज्ञोपवीत एक प्रकार का देव है। उससे किसी भी मलिन पदार्थ का संयोग नहीं होना चाहिये। मलिन अंग का संसर्ग न हो, मलिन स्थान में वह देव (यज्ञोपवीत) नहीं गिरे, इसीलिये सम्यग्दृष्टि श्रावक को यज्ञोपवीत की पूर्ण रक्षा करनी चाहिये। ऐसा ध्यान रखना चाहिये कि जिससे यज्ञोपवीत मलिन वस्तु से स्पर्शित नहीं हो जाये।

लघुशंका को जाते समय लघुशंका के छींटे यज्ञोपवीत पर नहीं गिर पडे और मूत्रेन्द्रिय से यज्ञोपवीत का स्पर्श न हो जावे, इसीलिये यज्ञोपवीत को दक्षिण कान पर स्थापित करना चाहिये।

मल छोड़ने के समय (शौच के समय) यज्ञोपवीत को वामकर्ण पर स्थापित करना चाहिये। अर्थात् मस्तक से लपेट कर यज्ञापेवीत को वामकर्ण पर स्थापित करना चाहिये।

वमन होने के समय यज्ञोपवीत को गले में दो-तीन बार लपेट लेना चाहिये, जिससे वमन के छींटें यज्ञोपवीत पर न गिरने पावे।

मैथुन करते समय यज्ञोपवीत मस्तक पर स्थापित करना चाहिये, जिससे अपवित्र वस्तु का संयोग यज्ञोपवीत से नहीं हो।

इसी प्रकार मलिन वस्तु के संयोग की आशंका होने पर यज्ञोपवीत को सम्भाल कर उच्चस्थान में स्थापित करना चाहिये।

सूचना :-

किसी भव्यजीव ने पेशाब करते समय अथवा शौच जाते समय यज्ञोपवीत को उच्चस्थान (कर्णादि) पर स्थापित नहीं किया हो अथवा विधि का अभ्यास नहीं होने के कारण से वह भूल गया हो तो उसे भावशुद्धिपूर्वक नौ बार णमोकार मन्त्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने से उसके द्वारा हुये अपराध की शुद्धि हो जाती है।

कोई जीव मैथुन के समय यज्ञोपवीत को मस्तक पर (शीर्ष) स्थापित करने की क्रिया को भूल जाये तो उसे नौ बार णमोकार मन्त्र का जप करना चाहिये। यही उसका प्रायश्चित्त है।

रात्रि के समय यज्ञोपवीत दुहरा रखने से मस्तक पर स्थापन करने की विशेष आवश्यकता नहीं रहती है।

यह समस्त विधि आगम में बतलायी गयी है। यथा-

शिरः प्रदेशे कर्णे वा धृत यज्ञोपवीतकः।

भावार्थ :- किसी भी कार्य में यज्ञोपवीत कान अथवा मस्तक पर धारण करें।

विण्मूत्रं तु गृही कुर्याद्, वामकर्णे व्रतान्वितः।
मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे, पुरीषे वामकर्णिके।।
धारयेद् ब्रह्मसूत्रन्तु, मैथुने मस्तके तथा।
यज्ञोपवीतं निर्धार्य, पूजायां दानकर्मणि।।

भावार्थ :- गृहस्थ मल-मूत्र के समय यज्ञोपवीत को मस्तक से वामकर्ण और दक्षिण कर्ण पर स्थापिन करें। वमन के समय गले में रखें। मैथुन के समय मस्तक पर रखें तथा पूजा और दानकर्म में सदैव लम्बायमान धारण करें।

आचमन, तर्पण आदि क्रियायें यज्ञोपवीत का विधि-विधान आगमानुसार करना चाहिये। क्षौरकर्म कराते समय यज्ञोपवीत को नाई से स्पर्श नहीं कराना चाहिये। इसीलिये उस समय यज्ञोपवीत को पवित्रता की रक्षा के लिये कन्धे से नीचे भाग में पीठ पर उतार लेना चाहिये।

सूचना :-

समस्त यज्ञोपवीत की क्रिया शरीर की सावधान अवस्था में पालन की जाती है। यदि रोगादिक के निमित्त से मूर्च्छा हो गयी हो तो यज्ञोपवीत की पवित्रता रखने का कार्य भी शिथिल हो जाता है। उसका एक यही उपाय है कि आरोग्यलाभ होने पर श्री जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक (विधिपूर्वक) करा कर चौबीस महाराज का पाठ करना चाहिये और रत्नत्रयपूजा करके यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार करना चाहिये। यही प्रायश्चित्त और शुद्धि का मार्ग है।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य सम्यग्दृष्टि जीव की क्रिया में यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य सम्यग्दृष्टि जीव को नित्य स्नान कर भगवान की पूजा करनी चाहिये। यदि अवकाश न हो अथवा कोई कारण विशेष प्राप्त हो

गया हो तो अर्घ्य चढ़ाना चाहिये। यदि ऐसा भी अवकाश न हो तो स्नानशुद्धि करके भगवान के दर्शन नित्य ही करना चाहिये। कदाचित् भगवान के दर्शन नहीं हो सकें, परदेश आदि में जिनमन्दिर न हो तो रस का परित्याग कर णमोकार मन्त्र का जप करके भोजन करना चाहिये।

जिस क्षेत्र में जिनमन्दिर का अभाव ही हो तो ऐसे क्षेत्र में निवास नहीं करना चाहिये। अथवा ऐसे क्षेत्र में जाना ही नहीं चाहिये कि जिसमें बहुत समय तक भगवान के परम पवित्र दर्शन का लाभ न हो। जो अपने-आपको जैन मानते हैं और हम जैन हैं-ऐसी प्रसिद्धि कराते हैं, परन्तु कुशिक्षादि के कारण जिनेन्द्र भगवान के दर्शन नहीं करते, जिनदर्शन करने की श्रद्धा भी नहीं रखते, जिनदर्शन में लाभ भी नहीं मानते, वे मिथ्यादृष्टि हैं।

जिनके जिनदर्शन करने का नियम नहीं है और जिनको जिनदर्शन करने में अरुचि है, वे जिनागम से बहिर्भूत मिथ्यादृष्टि हैं।

इसी प्रकार जो अपने को जैन कहलाते हुये भी भगवान की पूजा करने का निषेध करते हैं, आठ द्रव्य से पूजा करने को ढोंग बतलाते हैं, वे महामिथ्यात्वी हैं। वे भगवान की आज्ञा का लोप करने वाले हैं।

देवपूजा गुरुपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां, षट्कर्माणि दिने-दिने।।

अर्थात् :- **श्रावकों को प्रतिदिन देवपूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये छह कार्य करने चाहिये।**

यज्ञोपवीतधारक, पुण्यात्मा, भव्य जीव नित्य ही जिनागम पर श्रद्धा करते हुये शक्ति प्रमाण षट् आवश्यक कर्म को करते हैं।

षट् आवश्यक कर्मों (देवपूजा, गुरु-उपासनादि) को पवित्र वस्त्र धारण करके और तिलक लगा कर ही करना चाहिये।

जपो होमस्तपो दानं, स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
जिनपूजां श्रुताख्यानं, न कुर्यात् तिलकं विना।।

भावार्थ :- जप, होम, तप, दान, स्वाध्याय, जिनपूजन और शास्त्रश्रवण करना ये कार्य तिलक लगाये बिना नहीं करने चाहिये।

इसी प्रकार यज्ञोपवीत धारक पुण्यात्मा भव्यजीव जिनपूजन, दान, शास्त्रश्रवण आदि कर्म एक धोती को पहन कर (आधी धोती पहन कर और

आधी धोती ओढ़ कर) नहीं करना चाहिये अर्थात् धोती और दुपट्टे को पहन कर ही आवश्यककर्म करने चाहिये।

एकवस्त्रो न भुञ्जीत, न कुर्याद् देवपूजनम्।
न कुर्यात् पितृकर्माणि, दानहोमजपादिकम्।।
स्नानं दानं जपं होमं, स्वाध्यायं पितृकर्मणि।
नैकवस्त्रो गृही कुर्यात्, श्राद्धभोजनसत्क्रियाः।।

भावार्थ :- एक वस्त्र को पहन कर देवपूजन-दान-स्वाध्याय-होम-जप और पितृकर्म में श्राद्धभोजनादि सत्कर्म नहीं करना चाहिये।

दूसरे श्लोक का भी यही अभिप्राय है।

चरणानुयोग के विषयों का रहस्य समझने के लिये आगम-परम्परा और गुरु-परम्परा का अवलम्बन लिया जाता है।

प्रथमानुयोग तथा चरणानुयोग के ग्रन्थों का अध्ययन करने पर यह प्रमाणित हो जाता है कि श्रावकावस्था में किसी भी क्षण यज्ञोपवीत के बिना नहीं रहना चाहिये।

चरणानुयोग में तथा क्रियाओं के ग्रन्थों में यज्ञोपवीत को धारण करने के मन्त्र और विधि आदि का भी सविस्तार वर्णन किया गया है।

प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे न्यायग्रन्थों में भी यज्ञोपवीत के महत्त्व को प्रकट किया गया है।

बीसवीं शताब्दी में परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) और परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) आचार्य-परम्परा के अधिनायक रहे। उन दोनों ही आचार्य-परमेष्ठियों की परम्परा में यज्ञोपवीत के अभाव में संघस्थ चैत्यालयों में अभिषेक नहीं कराया जाता था और साधुगण उनसे आहार नहीं लेते थे। अतः पापभीरु जीवों को अपनी आत्मा के हित के लिये इस परम्परा का पालन करना चाहिये।

अंकलीकर परम्परा का चतुर्थ-पट्टाधीश, आचार्य सुविधिसागर

यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत धारण करने के मन्त्र

नवीन यज्ञोपवीत धारण करते समय निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण कर यज्ञोपवीत पहनना चाहिये।

ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

दूसरा मन्त्र :-

अतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा करोमि कलुषापहरणं महाभरणम्।।

ॐ नमः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा।

तीसरा मन्त्र :-

केवलज्ञानसाम्राज्ययुवराजपदाप्तये।
रत्नत्रयमिदं सूत्रं, कण्ठाभरणमादधे।।

ॐ नमः रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा।

जिन्हें उपर्युक्त मन्त्र कण्ठस्थ नहीं हो तो णमोकार मन्त्र पढ़ कर यज्ञोपवीत पहन लेना चाहिये।

कश्चिन्नभचराधिपतनय, तव कुचतटपरिणाहपर्याप्तं वा न वेति निरीक्ष्यतामिदमिति विवक्षुरिव वक्षःस्थलादुपवीतमुपादाय सविलाससमंसदेशे न्यवेशयत्।

(गद्यचिन्तामणि = तृतीय लम्ब)

अर्थात् :- किसी राजा ने वक्षःस्थल से जनेऊ उठा कर विलासपूर्वक अपने कन्धे पर रख लिया मानो वह कहना चाहता था कि हे विद्याधर राजपुत्रि! देखो हमारा वक्षःस्थल तुम्हारे स्तनतट के विस्तार के लिये पर्याप्त है अथवा नहीं ?

अंकलीकर परम्परा का चतुर्थ–पट्टाधीश, आचार्य सुविधिसागर

यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत की लम्बाई

यज्ञोपवीत कितना लम्बा होना चाहिये?

सूत्रं लम्बं हस्तमानं, चत्वारिंशच्छताधिकम्।
तत्त्रैगुण्यं परिर्वृत्यां, तद्वृत्या त्रिगुणं पुनः।।
(श्री भट्टाकलंक संहिता)

भावार्थ :- एक सौ चालीस अंगुल कच्चे सूत का यज्ञोपवीत बनाना चाहिये। उसको तिगुणा करने पर साढ़े छयालीस अंगुल रहेगा। फिर उसकी तीन लड़ी बनाने से पन्द्रह अंगुल से कुछ अधिक लम्बा होगा। यह यज्ञोपवीत का उत्कृष्ट प्रमाण है।

मध्यम एक सौ आठ अंगुल सूत का यज्ञोपवीत होता है।

बालकों को जघन्य लम्बा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

विसोत्थेन च सूक्ष्मेण, स्निग्धेनाखण्डपाण्डुना।
दृढेन ग्रन्थिवर्जेन, शुचिनैकेन तन्तुना।।१६।।
त्रिगुणेनैकभूतेन, वलितेन प्रदक्षिणम्।
एकीभूतत्रिवर्त्यात्मनैवं कृत्वा नवात्मना।।१७।।
पुनस्त्रिगुणितेनैव, पृथक्भूतेन तेन वै।
इति कृत्वा सप्तविंशत्यात्मना तेन शोभिना।।१८।।
सम्यग्दृग्बोधरूपेण, सु–सामान्यविशेषतः।
सर्वतत्त्वस्वरूपेण, यज्ञसूत्रेण तेन च।।१९।।

भावार्थ :- यज्ञोपवीत एक कच्चे, कमलदण्ड के तोड़ने से निकले हुये तन्तु के समान सूक्ष्म, चिकना, अखण्ड, सफेद, गाँठरहित, पवित्र तन्तु का होना चाहिये। उस सूत्र को तीन लड़ी बना कर ऐंठना। फिर इस प्रकार एक लड़ी में तीन-तीन आवर्त्य कर सत्ताईस लड़ी का यज्ञोपवीत बनावे। तीन लड़ी में सत्ताईस सूत्र हों, वह सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयरूप है।

अङ्गुष्टमूलादाकण्ठनालमात्रप्रमेण च।
अर्धोरुकप्रमाणेन, वालं कुर्यात् द्विजोत्तमः।।२०।।

भावार्थ :- यज्ञोपवीत को कण्ठ में धारण कर और अंगुष्ठ में लगा कर अपने हाथ घुटने की तरफ लम्बा करने पर जितना लम्बा हाथ हो, उतना ही लम्बा यज्ञोपवीत होना चाहिये।

यज्ञोपवीत की गाँठ :-

यज्ञोपवीत की गाँठ अनेक प्रकार की होती है। प्रतिमाधारी श्रावक और ब्राह्मणों को ब्रह्मगाँठ (गोलगाँठ, माला के दाने जैसी गाँठ) का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

जिनको यज्ञोपवीत बनाना नहीं आता हो, वे बाजार से नौ तारों का यज्ञोपवीत खरीद कर पहन सकते हैं।

यज्ञ और उपवीत इन दो शब्दों से यज्ञोपवीत शब्द निष्पन्न हुआ है।

यज् धातु से भावार्थक नङ् प्रत्यय का संयोग करने पर यज्ञ शब्द निर्मित होता है। यज्ञ शब्द का अर्थ है-पूजन करना, आहूति देना, सम्मान करना अथवा आदर करना।

उपवीत शब्द नपुंसकलिंगी हैं। उप उपसर्गपूर्वक वे धातु के साथ क्त प्रत्यय का संयोग करने पर उपवीत शब्द बनता है। उपनयन संस्कार को उपवीत कहते हैं।

जिनेन्द्र भगवान की पूजन करके उपनयन संस्कार किया जाता है। अतः इस क्रिया को यज्ञोपवीत कहते हैं।

यज्ञोपवीत को धारण करने का अर्थ है-जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके संकल्प करना कि मैं आज से रत्नत्रय को धारण करता हूँ। श्रावकधर्म के अनुकूल मैं अपने रत्नत्रय का पालन करूँगा। मैं अपने श्रद्धादि गुणों को विशुद्ध बनाने का प्रयत्न करूँगा।

इसी संकल्प के प्रतीकरूप में सूत के धागे का बना हुआ यज्ञोपवीत गले में ग्रहण किया जाता है। अतः यज्ञोपवीत को रत्नत्रय का प्रतीक मानना चाहिये, धागामात्र नहीं।

अंकलीकर परम्परा का चतुर्थ-पट्टाधीश,

आचार्य सुविधिसागर

यज्ञोपवीत संस्कार

यज्ञोपवीत सम्बधित विशेष विधि

पण्डित लालाराम जी के द्वारा सम्पादित षोडशसंस्कार के आधार से यज्ञोपवीत सम्बधित विशेष विधि प्ररूपित की जाती है।

क्रियोपनीतिर्नामास्य, वर्षे गर्भाष्टमे मता।
यत्रापनीत केशस्य, मौजीसद्व्रतबन्धना।।
कृतार्हत्पूजनस्यास्य, मौजीबन्धो जिनालये।
गुरुसाक्षिविधातव्यो–व्रतार्पणपुरस्सरम्।।
शिखी सितांशुकः सान्तर्वासो निर्वेषविक्रियः।
व्रतचिह्नं दधत्सूत्रं, तदोक्तो ब्रह्मचार्यसौ।।
चरणोचितमन्यच्च, नामधेयं तदास्य वै।
वृत्तिश्च भिक्षयान्यत्र, राजन्यादुद्धवैभवात्।।
सोऽन्तःपुरे चरेत्पात्र्यां, नियोग इति केवलम्।
तदग्रं देवसात्कृत्य, ततोऽन्नं योग्यमाहरेत्।।

(आदिपुराण = ३८/१०४ से १०८)

इस संस्कार का नाम उपनीति, उपनयन अथवा यज्ञोपवीत है। यह संस्कार ब्राह्मणों को गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रियों को ग्याहरवें वर्ष में और वैश्यों को बारहवें वर्ष में करनी चाहिये।

जिस किसी ब्राह्मण की यह इच्छा हो कि मेरा बालक अधिक दिन तक ब्रह्मचारी रह कर विद्याध्ययन करें, वह उस बालक का उपनयन पाँचवें वर्ष में कर देवें। जिस क्षत्रिय की इच्छा बालक को बलिष्ठ बनाने की है, वह छठे वर्ष में और जिस वैश्य की इच्छा अधिक द्रव्योपार्जन की है, वह अपने बालक का यज्ञोपवीत आठवें वर्ष में ही कर देवें।

यदि कारण–कलापों से नियत समय तक उपनयन विधान न हो सका हो तो ब्राह्मणों को सोलह वर्ष तक, क्षत्रियों को बाईस वर्ष तक और वैश्यों को चौबीस वर्ष तक यज्ञोपवीत संस्कार कर लेना उचित है।

यह उपनीतिसंस्कार का अन्तिम समय है। जिस पुरुष का यज्ञोपवीत संस्कार इस समय तक नहीं हुआ है, वह पुरुष उच्छृंखल होकर धर्मविमुख हो सकता है। यज्ञोपवीतरहित पुरुष पूजा-प्रतिष्ठादि करने के अयोग्य होता है।

पुत्रों के भेद :-

सात प्रकार के पुत्र माने गये हैं। अपना पुत्र, अपनी लड़की का पुत्र, दत्तक (गोद लिया हुआ) पुत्र, मोल लिया हुआ पुत्र, पाला हुआ पुत्र, अपनी बहिन का पुत्र और शिष्य।

आचार्य :- यज्ञोपवीत कराने वाला आचार्य बालक का पिता हो सकता है। यदि पिता न हो तो पितामह (पिता के पिता), यदि वे भी न हो तो पिता के भाई (काका, चाचा, ताऊ वगैरह)। यदि वे भी न हो तो अपने कुल में उत्पन्न हुआ कोई भी मनुष्य और यदि ऐसा पुरुष भी न हो तो अपने गोत्र का कोई भी पुरुष आचार्य बन कर यज्ञोपवीत करा सकता है।

यदि बालक के पिता, पितामहादिक यज्ञोपवीतविधि न जानते हो तो अपने स्थान में कोई दूसरा आचार्य नियुक्त कर सकते हैं। आचार्य नियत करने कीं विधि नान्दीविधान में लिखी हुयी है।

यज्ञोपवीत :- यज्ञोपवीत बनाने के लिये घर की स्त्रियों से ही सूत कतावें। कच्चे सूत को त्रिगुणित कर बट लेवें तथा दूसरी बार फिर त्रिगुणित कर गाँठ देकर यज्ञोपवीत बना लेवें। यज्ञोपवीत की लम्बाई ब्रह्मस्थान से (मस्तक पर के तालु छिद्र से) नाभिपर्यन्त होनी चाहिये। कम लम्बाई से रोगादि पीड़ा और अधिक लम्बाई से धर्मविघात होना-ऐसा आचार्यसम्मत है।

यज्ञोपवीत संस्कार के मुहूर्तदिन से दश, सात अथवा पाँच दिन पहले नान्दी विधान किया जाता है। इसकी अतिसंक्षेप विधि यह है कि जिस दिन नान्दी विधान करना हो उस दिन बालक का पिता दो-चार भाइयों के साथ आचार्य के घर जावें। यथासाध्य कुछ भेंट देकर विधि कराने की प्रार्थना करें। आचार्य उस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार करें।

आचार्यसमेत सभी लोग वहाँ से उठ कर उसी समय जिनालय में आवें। जिनालय में दर्शन-पूजनादिक करके तत्रस्थ सभामण्डप में बैठें। इस समय आचार्य फिर अपनी स्वीकृति प्रदान करें। पश्चात् सभी लोग आचार्य को उनके घर पहुँचा कर अपने घर जायें।

जिस दिन शुभ ग्रह, योग, नक्षत्रादिक हों, उसी दिन यज्ञोपवीत की विधि करें। प्रथम ही बालक को स्नान करा कर वस्त्राभूषण पहनावें तथा माता के साथ भोजन करावें। अनन्तर शिर के केशों का मुण्डन करावें। केवल शिखा शेष रहने देवें। हल्दी, घी, सिन्दूर, दूर्वा, दर्भ आदि मिला कर बालक के शरीर से लेपन करें। थोड़ा-सा विश्राम लेकर स्नान करावें। अनन्तर आचार्य पुण्याहवाचन मन्त्र को पढ़ते हुये कुशों से पवित्र जल लेकर बालक का सिंचन करें।

इसी समय पुण्याहवाचन पाठ समाप्त हो जाने पर नीचे लिखे हुये मन्त्रों से सिंचन करें। परमनिस्तारकलिङ्गभागी भव, परमषिलिङ्गभागी भव, परमेन्द्रलिङ्गभागी भव, परमराज्यलिङ्गभागी भव, परमार्हन्त्यलिङ्गभागी भव, परमनिर्वाणलिङ्गभागी भव, इन मन्त्रों से सिंचन करने के बाद बालक के शरीर को सुगन्धित द्रव्यों से लेपन करें।

अनन्तर श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा और होम प्रारम्भ करना चाहिये और जब यथाविधि समाप्त हो जाय और यज्ञोपवीत देने का समय निकट आ जाये, तब ग्रहस्तोत्र पढ़ कर **णमो अरहंताणं** इत्यादि पंच-नमस्कार का मन्त्र स्मरण करना चाहिये। उस समय बालक उत्तरदिशा की ओर मुख कर पद्मासन से बैठें। अपने जन्म की शुद्धि करने के लिये आँखों का टिमकार बन्द कर पिता के मुख को देखें तथा पिता उसी शुभ मुहूर्त में पुत्र के सन्मुख खड़ा होकर उसके मुख को देखें और उसके ललाट पर चन्दन का तिलक लगा देवें।

अनन्तर मौजी पहनाना चाहिये। मूँज की एक पतली रस्सी बाँट कर उसे त्रिगुणित कर बालक को कमर में बाँधने योग्य बना लेना चाहिये और **ॐ ह्रीं कटिप्रदेशे मौजीबन्धप्रकल्पयामि स्वाहा** यह मन्त्र पढ़ कर बालक की कमर में मौजी और एक कौपीन (लंगोटी) बाँध दें। तथा **ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थङ्कर परमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौजीबन्धनं करोमि पुण्यबन्धो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा** इस मन्त्र को पढ़ कर मौजी को हाथ में लेकर उस पर पुष्प और अक्षत डालना चाहिये।

अनन्तर बालक का पिता रत्नत्रय के चिह्नस्वरूप यज्ञोपवीत को हल्दी और चन्दन से रंग कर **ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतीयार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं धारयामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा** यह मन्त्र पढ़ कर उस बालक को वह पहनावें।

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थङ्कर परमेश्वराय कटिसूत्र परमेष्ठिने ललाटे शेखरं शिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धिरस्तु ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा यह मन्त्र पढ़ कर ललाट पर तिलक करें और चोटी पर पुष्पमाला रखें। बालक नवीन धोती-दुपट्टा पहनें। तद्उपरान्त आचमन करें, तर्पण करें और श्री जिनेन्द्रदेव को अर्घ्य देवें।

अनन्तर बालक हाथ में चन्दन, अक्षत और फल लेकर दोनों हाथों को जोड़ परम निःश्रेयस मोक्ष की अभिलाषा करता हुआ आचार्य से व्रत की याचना करें। आचार्य भी श्रावकाचार के यथोचित व्रत का उपदेश देवें। बालक उसे सहर्ष स्वीकार करें तथा आचार्य से **ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं** इत्यादि बीजमन्त्रों का और **णमो अरिहंताणं** इत्यादि पंच-नमस्कार मन्त्र का श्रवण कर उन्हें स्वीकार करें।

इस बालक का इस समय जो वेष है, वह ब्रह्मचारी का है। उसका यह ब्रह्मचर्य विवाहपर्यन्त शुद्ध रहना उचित है।

अनन्तर अपने शरीर की ऊँचाई के समान लम्बा दण्डा लेवें। उसका ऊपर का चौथाई भाग हल्दी से रंग लेवें। बालक यह दण्डा हाथ में लेकर अग्नि के उत्तर की ओर खड़ा होवें और पूर्व की ओर मुख करके तीन अर्घ्य देवें। तद्उपरान्त अपने आसन पर आ बैठें।

इसी समय होम की पूर्णाहूति देनी चाहिये। बालक स्वयं शमी, अक्षत, लाजा (खीले), खीर, घी और नैवेद्य को मिला कर तीन आहूति देवें। ये आहूति शान्ति के लिये दी जाती है।

फिर बालक होठों को बन्द कर मुख का प्रक्षालन करें। अपने हाथों को होम की अग्नि से सेक कर तीन बार मुख से लगावें तथा अग्नि की स्तुति कर उसका विसर्जन करें।

अनन्तर बालक प्रथम ही अपना दायाँ पैर आगे रख कर होममण्डप से बाहर आवें। प्रथम ही माँ के समीप जाकर (मातर्भिक्षां देहि) माता भिक्षा दीजिये-ऐसा स्पष्ट और उच्च स्वर से कहें। माता भी दोनों हाथों से चावल भर कर पुत्र को देवें। यह माता से आयी हुयी पहली भिक्षा श्री जिनेन्द्र देव को अर्पण करें। माता से भिक्षा माँगने के बाद भाई, बिरादरी के उपस्थित लोगों से भिक्षा माँगें। सब लोग चावल अथवा खाने योग्य कोई पदार्थ भिक्षा में देवें। भिक्षा में जो खाने योग्य पदार्थ मिलें, उसे बालक स्वयं खाने के काम में लेता है।

यज्ञोपवीतविधि में यह भिक्षाविधि सामान्यतः सभी को करनी चाहिये। परन्तु, राजपुत्र और अत्यन्त समृद्धशाली धनी लोगों के लिये यह विधि आवश्यक नहीं है। बालक जब भिक्षा माँग रहा हो, तब कुटुम्ब के बन्धुवर्ग आकर उसे कहें कि वत्स! तू अभी बालक है, देशान्तर जाने के योग्य नहीं है। इसीलिये यहीं गुरु के समीप रह कर विद्याभ्यास कर। बालक भी ये वचन सुन कर वहीं पर रहने की स्वीकृति प्रदान कर भिक्षा माँगना बन्द कर देवें।

अनन्तर सब लोक बालक के साथ-साथ श्री जिनालय में जावें और दर्शन-पूजनादि कर वापिस आवें।

उस दिन सधर्मी भाइयों और बिरादरी को भोजन कराना चाहिये तथा वस्त्र-ताम्बूलादि भेंट में देकर उनका सत्कार कराना चाहिये।

महीने-महीने बाद यज्ञोपवीत बदलना चाहिये। श्रावण माह में श्रावणी (पूर्णिमा) के दिन अतिसंक्षेप से होमादि क्रिया कर यज्ञोपवीत बदलना चाहिये।

यज्ञोपवीत होने के एक वर्ष बाद से नित्य सन्ध्यावन्दनादि क्रिया करना उचित है।

यज्ञोपवीत की संख्या :-

विद्यार्थी को तथा नियत काल तक ब्रह्मचर्य धारण करने वालों को एक, गृहस्थों को दो यज्ञोपवीत धारण करना योग्य है। जिन गृहस्थों के पास दुपट्टा नहीं हो तो उन्हें तीन यज्ञोपवीत पहनने चाहिये। जिसे अधिक जीवित रहने की इच्छा है, उसे दो अथवा तीन यज्ञोपवीत पहनने चाहिये और जिसे पुत्र की इच्छा है अथवा जिसे धार्मिक होने की इच्छा है, उसे पाँच यज्ञोपवीत पहनना चाहिये।

एक यज्ञोपवीत पहन कर जप-होमादि करना अयोग्य है, क्योंकि ऐसा करने से सब व्यर्थ होता है।

जो यज्ञोपवीत गिर जाय अथवा टूट जाय तो स्नान करके अथवा स्नान का संकल्प करके दूसरा नवीन यज्ञोपवीत पहनना चाहिये। पहनते समय वही **ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा** यह मन्त्र पढ़ना योग्य है।

एक-एक यज्ञोपवीत के लिये पृथक्-पृथक् एक-एक बार मन्त्र पढ़ना चाहिये। यदि एक बार ही मन्त्र पढ़ कर दो-तीन अथवा पाँच यज्ञोपवीत धारण किये जायेंगे तो किसी एक के टूटने से सब टूटे हुये समझे जायेंगे।

जो यज्ञोपवीत उतर जाय अथवा टूट जाय तो उसे किसी जलाशय (नदी, तालाब आदि) में डाल देना चाहिये।

ब्राह्मणों को सूत का, राजाओं को सुवर्ण का और वैश्यों को रेशम का यज्ञोपवीत पहनना चाहिये।

व्रतावतरण :-

व्रतचर्यामतो वक्ष्ये, क्रियामस्योपविभ्रतः।
कट्यूरुरःशिरोलिङ्गमनूचानव्रतोचितम्।।

(आदिपुराण = ३८/१०८)

यज्ञोपवीत के बाद विद्याध्ययन करने का समय है। विद्याध्ययन करते समय कटिलिंग (कमर का चिह्न) ऊरुलिंग (जंघा का चिह्न), उरोलिंग (छाती का चिह्न) और शिरोलिंग (शिर का चिह्न) धारण करना चाहिये।

१. कटिलिंग :- इस विद्यार्थी का कटिलिंग त्रिगुणित मौजीबन्धन है, जो कि रत्नत्रय का विशुद्ध अंग और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य हा चिह्न है।

२. ऊरुलिंग :- इस विद्यार्थी का ऊरुलिंग धुली हुई सफेद धोती है, जो कि जैनमत को पालन करने वालों के पवित्र विशाल कुल को सूचित करती है।

३. उरोलिंग :- इस विद्यार्थी के हृदय का चिह्न सात सूत्रों से बनाया हुआ यज्ञोपवीत है। यह यज्ञोपवीत सात परम स्थानों का सूचक है।

४. शिरोलिंग :- विद्यार्थी का शिरोलिंग शिर का मुण्डन करना है, जो कि मन-वचन-काय की शुद्धता का सूचक है।

प्रत्येक विद्यार्थी को ऊपर कहे हुये चारों चिह्न धारण कर ब्रह्मचर्य की विशुद्धता के लिये अहिंसादि अणुव्रत धारण करना चाहिये।

ऐसे विद्यार्थी को लकड़ी की दतौन, ताम्बूल, अंजन और उबटनादि लगा कर स्नान करना अनुचित है। उसे शरीर की शुद्धि के लिये केवल दिन में स्नान करना चाहिये।

ऐसा विद्यार्थी पलंग, चारपाई आदि पर न सोवें, न किसी दूसरे शरीर से अपना शरीर रगड़ें। वह भूमि पर अकेला ही सोवें। इसी में इस के व्रत की शुद्धता रह सकती है।

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् इस विद्यार्थी को प्रथम ही उपासकाचार (श्रावकाचार) गुरुमुख से पढ़ना चाहिये। गुरुमुख से पढ़ने का अभिप्राय यह है

कि श्रावकों की बहुत-सी ऐसी क्रियायें हैं, जिनका ज्ञान अनेक शास्त्रों के मन्थन करने से प्राप्त होता है, किन्तु गुरुमुख से वे सहज ही प्राप्त हो सकती हैं। श्रावकाचार पढ़ने के बाद न्याय, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि पारमार्थिक लौकिक विद्याओं को भी पढ़ना चाहिये।

यह बालक जब तक विद्याध्ययन करेगा, तब तक उसके ये ही वेष और व्रत रहेंगे। जब विद्याध्ययन समाप्त हो जायेगा, तब इसका यह वेष और व्रत भी समाप्त हो जायेगा। गृहस्थों के जो मूलगुण होते हैं, वे ही इसके होंगे।

श्रावण माह और श्रवण नक्षत्र में पूर्व के समान होमादिक्रिया करके कटिलिंग मौजी का त्याग करें, गुरु की साक्षीपूर्वक वस्त्र पहनें, ताम्बूल खायें और शय्या पर सोवें। उसी समय आभरण और माला आदि पहनें। जो लड़का शस्त्रोपजीवी है वह शस्त्र धारण करें। जो वैश्य है, वह व्यापारादि में लग जायें।

यज्ञोपवीत के दिवस श्रावण शुक्ला पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) की क्रिया-

श्रावणे स्नानतर्पणानन्तरं-अद्य भगवते पौर्णिमास्यां तिथौ श्रवण नक्षत्र युक्तायां सर्वोत्तमे पर्वणि दुःखसुखमाभिधान तुरीयकालप्रारम्भे आधित्यध्यापनादि विशिष्ट कर्मानुष्ठानपरायण ब्राह्मणाभिजनविदित्सायां आद्येन चक्रिणा अन्त्येन वेधसा षोडशतमेन कुलधरेण राजर्षिणा भरतेश्वरेण मङ्गलार्थं परीक्षार्थसमुत्पादित सर्वधान्यां कुरप्रसारितप्रदेशे परीक्ष्येण सम्यग्दृशो ब्राह्मणाः ब्रह्मोपलक्षितयज्ञसूत्रं सन्धारणा-दाविर्भूतास्तेषां यज्ञोपवीतसन्धारणार्थं विधीयमानस्य होमकर्मणोऽनादिमुखे पुण्याह-वाचनां करिष्ये-इति श्रावणसङ्कल्पः। आज्यसमिधाहूतिं विधाय यज्ञोपवीतमन्त्रेण यज्ञोपवीताहूतिं दत्वा यज्ञोपवीतं सन्धार्याचम्य ॐ भूर्भुवः स्वाहा इत्यादिना तिलहोमं कृत्वा वाचनां गृह्णीयात्तद् ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थानाम्। इति श्रावण विधिः

गर्भाष्टमे विप्राणां, नवमे क्षत्रियाणां, दशमे वैश्यानामुपनीतिक्रिया भवति। अगतिगत्या चेद् विवाहेऽवश्यमेव कार्यः चतुर्विंशतितमे वर्षे वा।

तत्र कुमारस्य केशवापन चतुष्कोणकलशादीन् स्नानं वाचनां जिनार्चनां कृत्वा ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृताङ्गायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा। ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थङ्कर परमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौजीबन्धं करोमि पुण्यबन्धो भवतु अ सि आ उसा स्वाहा। ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थङ्कर परमेश्वराय कटिसूत्रं परमेष्ठिने ललाटशेखरं

शिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ॐ श्री ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा। नवीन वस्त्रोत्तरीयपरिधानं पूर्ववत् कुर्यात्। पश्चादाचमनपूर्वकं नवीनौन्दुम्बर विष्टरे प्राङ्मुखमुत्तरमुखं वा उपविश्य सुमुहूर्ते उपाध्यायः पिता वा कुमारस्य मुकुलितौ स्वहस्तौ स्वहस्ताभ्यां धृत्वा ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कुमारस्योपनयनं करोमि अथ विप्रोत्तमो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा इति त्रिरुच्चार्य पञ्चनमस्कारमुपदिशेत् तदनन्तरं होमदानादिकं कुर्यात्।

ततः प्रागुक्त प्रातरुत्थानादिकं सदाचरणं विधेयं चतुर्थदिने पूर्ववत् स्नानपुण्याहजिनार्चनं होमं विधाय शोभनां वसतिं गत्वा त्रिपरीत्य जिनान् गुरुन् समभ्यर्च्य वन्दित्वा स्वगृहे शिष्टबन्धुजनैः सह भुञ्जीत। तदुपनीते तेन शिरोमुण्डनं कटिसूत्रं कौपीनमौजीबन्धनं ब्रह्मचर्यं षण्मासपर्यन्तं संवत्सरत्रयपर्यन्तं वा विधेयम्।

(ब्रह्मसूरि विरचित त्रिवर्णाचार)

जनेऊ बनाने की विधि :-

जनेऊ छियानवें चोक (चार अंगुलियों के एक साथ जोड़ने को चोक कहते हैं) का होता है-ऐसा आगम प्रमाण है। इस प्रकार एक चोक के तीन अविच्छिन्न तन्तु सौभाग्यवती स्त्री अथवा कन्या के हाथ से काते हुये सूत को लेकर एक लड़ी करना चाहिये। चोक से ही सूत का प्रमाण क्यों बतलाया ? इस प्रश्न का समाधान यह है कि चार पुरुषार्थ की शुद्धि रत्नत्रय के धारक पुरुष को ही होती है। उसको त्रिगुणित करने पर सत्ताईस तत्त्ववेष्टित नवदेवता (अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्व साधु-जिनागम-जिनधर्म-जिनचैत्य और जिन चैत्यालय) के स्वरूप का बोध कराता है। यज्ञोपवीत की ग्रन्थियाँ तत्त्वों का ध्यान कराती है।

सूचना :-

* यज्ञोपवीत संस्कार के पहले हवन अवश्य करना चाहिये।
* ब्रह्मसूरि विरचित त्रिवर्णाचार श्रीमान सेठ सेवाराम जी रानी वाले के भण्डार से प्राप्त हुआ है।

यज्ञोपवीत संस्कार

श्रावक के व्रत

श्रावक को निम्नांकित व्रत ग्रहण कर श्रद्धापूर्वक पालन करने चाहिये। वे नियम निम्नांकित हैं-

१. देव-शास्त्र-गुरु का अविचल भाव से श्रद्धान करना।
२. आठ मूलगुणों को विधिपूर्वक प्रतिज्ञा लेकर धारण करना।
३. श्री जिनेन्द्रदेव की पूजन करना।
४. सुपात्र में आहारादिक दान देना।
५. संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) के साथ वात्सल्यभाव रखना।
६. सम्यग्दृष्टि के गुणों में अनुराग रखना।
७. भोजनशुद्धि और खान-पान के पदार्थों की शुद्धि रखना।
८. अपनी सन्तान के संस्कार विधिपूर्वक करना।
९. जिनागम का स्वाध्याय करना, अपने बालक-बालिकाओं को सबसे प्रथम अनिवार्यरूप से जिनागम पढ़ाना।
१०. कुशिक्षा और कुसंगति से बालकों की रक्षा करना।
११. पानी छान कर पीना।
१२. शूद्र के हाथ का स्पर्श किया हुआ जल, घी, तेल, आटा और खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करना।
१३. पाँच पापों (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह) का परित्याग करना।
१४. जीवदया का पालन करना।
१५. रात्रि में अन्न के पदार्थों का सेवन नहीं करना।
१६. विधवाविवाह, जातिलोप और विजातीयविवाह नहीं करना।
१७. * शास्त्रोक्त सूतक-पातक, रजोधर्मादि विधायी क्रियाओं का पालन करना और दोषों की सहर्ष प्रायश्चित्त विधान से शुद्धि करना।

गुरुदेव की आरती

(तर्ज :- माही न माही मुण्डेर पे तेरी)

कुन्थुगिरि के भाग्यविधाता, चरणों में तेरे आये।
स्वर्णथाल में रत्नदीप ले, मंगल आरती गाये।
सूरिवर कुन्थुसागर की जय, मुनिवर कुन्थुसागर की जय।।धृ।।

बाहेड़ा में जन्म लियो है, सोहनदेवी मैया।
आगमज्ञाता पिता तुम्हारे, नाम था पावन रेवा।।
बाल कन्हैया की लीला लख, परिजन मन मुस्काये।
स्वर्णथाल में रत्नदीप ले, मंगल आरती गाये।
सूरिवर कुन्थुसागर की जय, मुनिवर कुन्थुसागर की जय।।१।।

महावीरकीर्ति सूरिवर से, भेष दिगम्बर धारा।
विमलसिन्धु से सूरिपद पाकर, निज आतम संस्कारा।।
गुरुवर से गणधर पद पाकर, भविजन पार कराये।
स्वर्णथाल में रत्नदीप ले, मंगल आरती गाये।
सूरिवर कुन्थुसागर की जय, मुनिवर कुन्थुसागर की जय।।२।।

दीक्षा-शिक्षा देय भव्य को, जिनवृष रक्षा करते।
बिन माँगे ही सब भक्तों की, झोली निशदिन भरते।।
भारतगौरव स्वात्महितैषी, तव पद शीश नमाये।
स्वर्णथाल में रत्नदीप ले, मंगल आरती गाये।
सूरिवर कुन्थुसागर की जय, मुनिवर कुन्थुसागर की जय।।३।।

आर्षमार्ग के संरक्षक तुम, मन्त्रशास्त्र के ज्ञाता।
सुविधियुत तप त्याग करे तुम, आत्मतत्त्व के ध्याता।
रानीला आणिन्दा आदिक, तीर्थक्षेत्र फहराये।
स्वर्णथाल में रत्नदीप ले, मंगल आरती गाये।
सूरिवर कुन्थुसागर की जय, मुनिवर कुन्थुसागर की जय।।४।।